

DPN 5481

Title: गोरक्ष पद्धति

GORAKṢA PADDHATI

Run. No. 6172

Cat. No.

Micro. No.

Subject योग योगशास्त्र

Religion: Hindu / Bauddha

Language: Skt. / New. / Nep. / Skt. - New. / Maith. - New. / New. - Nep. / OLD HINDI

Size in cms. 24 x 15.5

Folios 126

Lines (in a page)

अनुवाद / Translation

Compl. / Incompl.

Chapt. / act /

Author / translator

Scribe / donor

Date: NS / SS / VS / KS 1993 ~~written on cover~~

Ruler / place

Script: New. / Dev. / Bhuj. / Ran. /

Illus. :

Material: palmleaf / paper / thyasaphu /

Condition: fine / damaged by worms, rats, water /

Beginning, colophon, post-colophon :

↓
ॐ नमः श्रीगोहाय नमः अथ भाषानुवाद सहिता गोरक्ष पद्धति. श्री आदिनाथं
स्व गुरुं ह्रीं मुनिं गोरक्ष शास्त्रस्य प्रराम्य यो जिनेन्द्र ॥ भाषा विहसि (?)

अहले मही धागे ओगे सुकोध खनु आयले ॥१॥

श्री आदिनाथ ॥ धिक्जी ॥ लया निज अह हरि मुनि योगीको नाम कहे मही धा
नामा गोलुस योग दाल्हा ओ योगींद्र गोलुस : ध न (माय न ?) दो शालक मे
क्षिप्पोपवा ॥ १ ॥ ...

समाप्ति काय Post - Colophon

यह लिख्य है कि योग मार्ग का केध अनेक प्रकारे शब्दार्थ एवं शास्त्रार्थ मार्ग
पितृकीदि करने से नहीं होता. यह केवल अह लम्प है...

इस लिये अह प्रसादोवा एह प्रदीपादि ग्रन्थ देवके यह ग्रन्थ बढा दिया तथा भाष्यार्थ
भी यथामति प्रकट क/ दिया ॥१॥

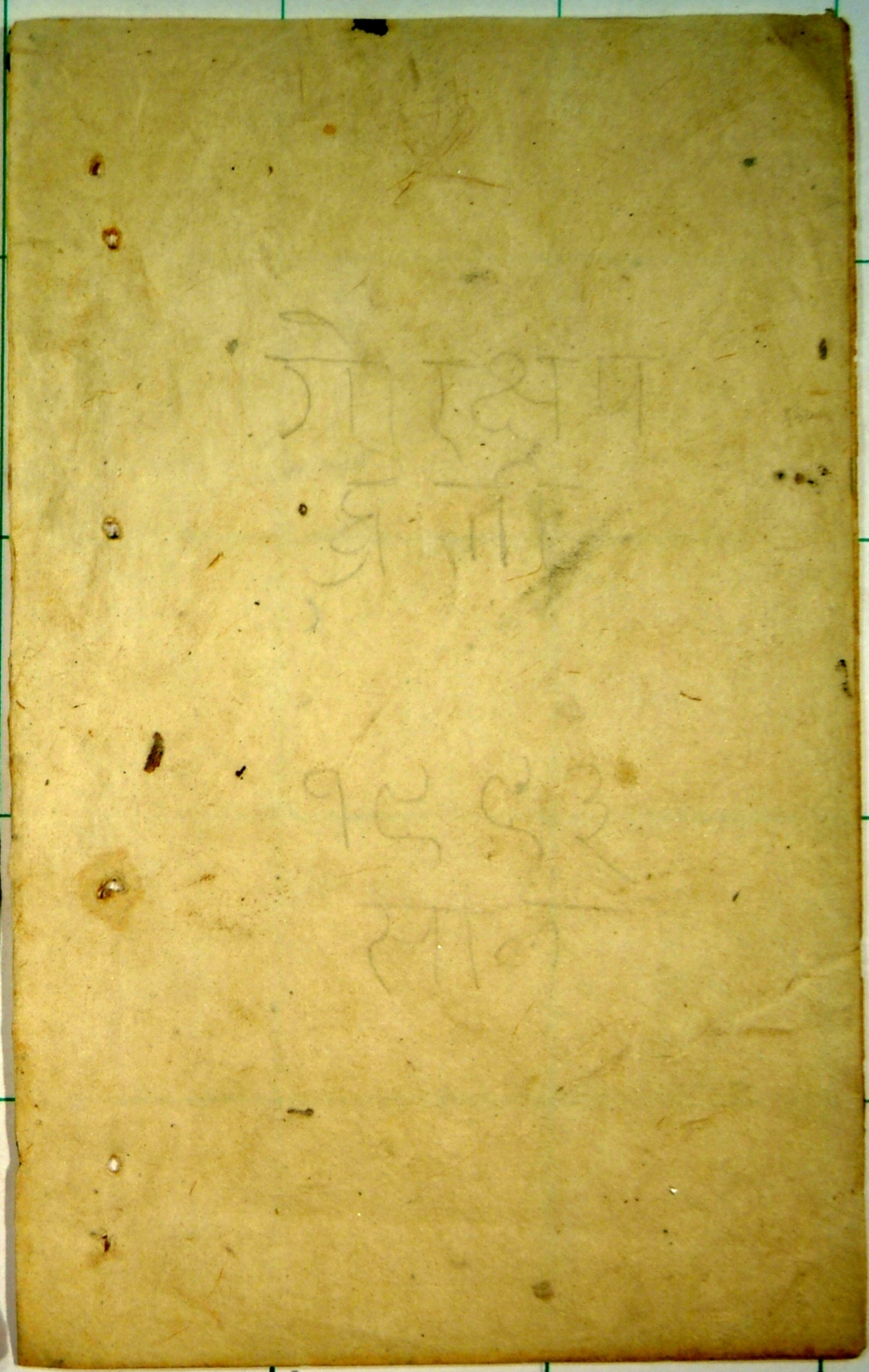
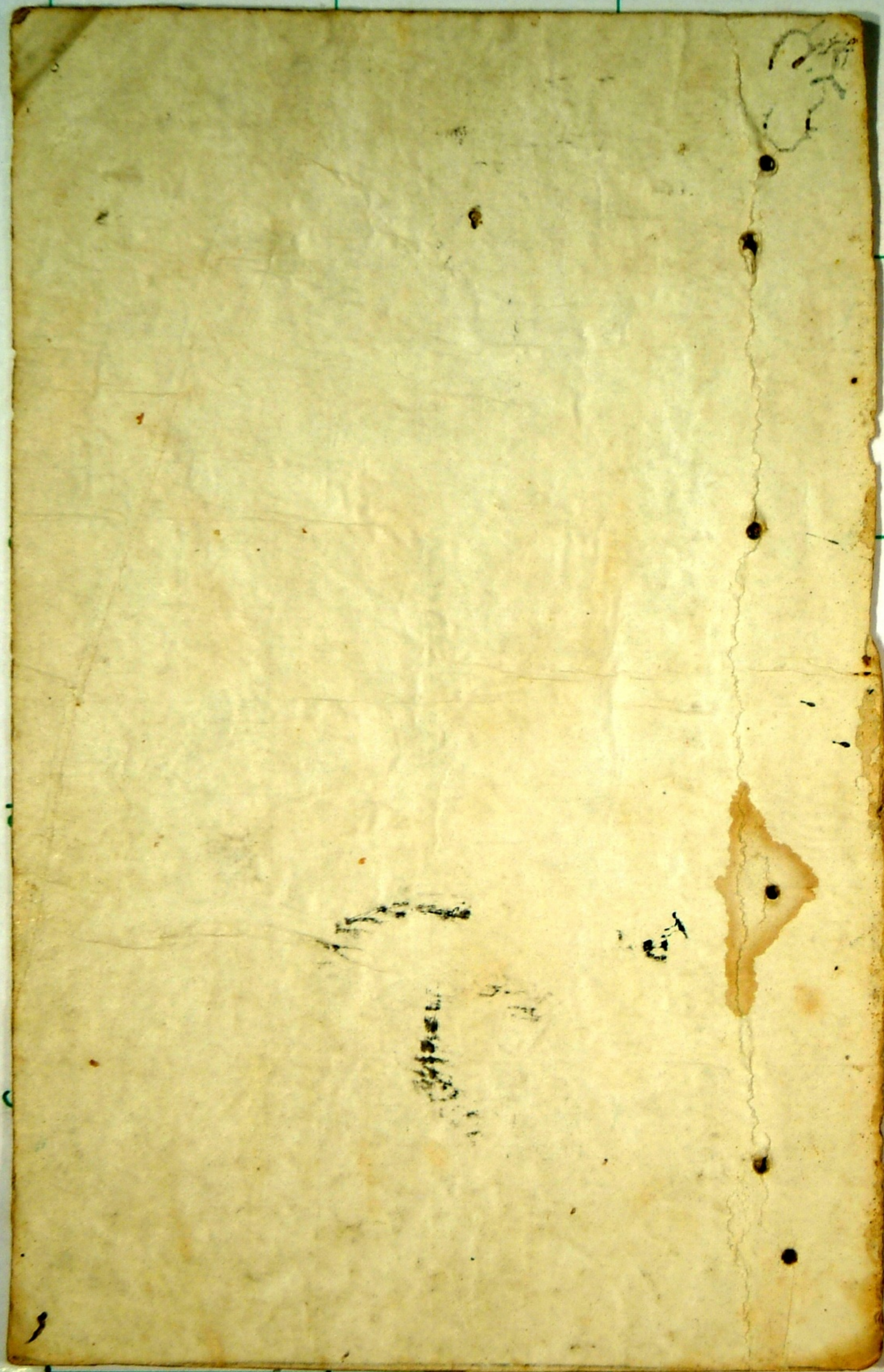
सन् १९९३ साल मार्ग शुक्ल षष्ठी दारीपण ॥

गोरक्ष पद्धति

CARNATION BRAND



MADE IN JAPAN



उडनमः श्रीगोशायनमः अथभावागुवा
 दसहिता गोरक्षपद्धतिः श्रीआदिनाथंश्च
 गुरुं हरिं मुनिं गोरक्षशास्त्रस्य प्रणामयोगिन
 म्। भावाविनिर्दिष्टतेमहीधरो योगमुबोधस्व
 लुगायोगे ॥१॥ श्रीआदिनाथ गुरुशिवजी गानथा
 गिन गुरु हरि मुनि योगी को गाम कर के महीधर
 गाम गोरक्ष योग ~~शास्त्र~~ जो योगी प्र गोरक्ष यन दो
 शन के में शिष्योपकारार्थ वना यह है ॥ ५॥ सकीनाभा
 दीकारना है जिससे योग मार्ग में सभी को सुगमता
 से बोध होता है योग पद का अर्थ मे ल है जे से
 हः का अर्थ सूर्य ॥ ४॥ का चंद्रमा है इनके योग
 (मेल) को कुरु योग कहते हैं इसी को राज योग
 भी कहते हैं प्राणा अपान वायु जीत को सूर्य चंद्र
 मा संशोद्धन का से क्य ~~क~~ रेवाला जो प्राणा भा
 म से हठ योग कहते हैं वा श्री गुरु पामानन्द
 वन्दे स्वानन्द विग्रह मा यस्म सा निधमा च
 शाचिदानन्दाय ते नतु ॥२॥ शिष्य को आ
 मा के तत्व बोध निमित्त गुरु स्वस्वधारण
 कर परम गुरु श्री परमात्मा को महस्त्रपल
 कमल में आवना पूर्वक प्रथम ग्रन्था है अमे
 विधु विधानार्थ प्रणाम करते हैं कि जीव ज
 ल की से क्य ता योग शास्त्र का प्रयोजन है

सङ्गुरुके समीप श्रुतिपूर्वक रहने से शिष्य
का पांचमौ तिक १। १। २। आनंदमय हो जाता
है। आनंद ही परब्रह्म का रूप है जे से श्रुतिमिक
होती है कि आनंदो ब्रह्मणो रूपम्। आदि ऐ
सा न हो तो उसकी पहचान भी नहीं हो सके कौन
कि न तपस से हत थोपल अते नानो न चादिने
चसंप्रतिष्ठा इत्यादि गोता। एवं वेदों न ग्रन्थों
में लिखे हो कि उसका रूप तथा जगत् मरणा मध्ये
जो रंग विरू भूर्ति आदि कुछ नहीं हैं केवल आ
नंदमय स्वयं प्रकाश माने है। तथा निर्विकल्प
आनंदमय हो जाने को हि मुक्ति कहते हैं। ऐसे प
रम आनंद स्वस्व परब्रह्म का जिसका १। १। २।
आनंद ही है। ७ वेदों के ग्रन्थों में करते हैं
जिससे सांनिध्य (सम्मुख) होने से अर्थात्
(केवलानुभवानंद) वह आनंद आत्मा परमा
त्मा केवल मन के मनन अनुभव विचार करने
से अपने ही बीच पाया जाता है न कि इतने स
तः नीर्थ यात्रादि फिरने से यह अनुभव
केवल योग ही से साध्य है अहं ज्ञान की प्रथ
म भूमि को है। नाडी शोधन वायु शोधन ध्यान
धारणा आदिविना एवं गुरु कृपा विना नहि
मिलेगा विना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिलती श्रुति

कहती है कि अनेकानान्तर मुक्ति मुक्ति पदा
र्थ वही आनंदमय जाता है। योग सिद्धान्त पा
य के जीव परमात्मा का एक भाव होने में वह
आनंद स्वस्व परब्रह्म साक्षात्कार होता है। इस
ज्ञानात्मक प्रत्यक्ष मात्र होने ही से परम विदा
नंदमय आप ही योगी हो जाते हैं जे से ज्ञान की
सात भूमि का है ज्ञान भूमि विचारणा रत भूमा
न सा ३ मत्वा पत्ति संसक्ति नामिका पम पदा
र्थाभाविनी इत्युक्तं ये सा नैव विवेक वैरा
ग्ये प्रथम जिसमें एभी तीव्र पुमुक्षा रूप
हि ली अवस्था मन न ह पाइ सति मन में आन
क अर्थ संकल्प विकल्प उत्पन्न तथा नाश हो
ते हैं। इन सभी को छोड़ के सत् स्वरूप कार्य में ही
निःशोनी ननु मानसा नी सति ये तीव्र साधन
भूमि में है इनसे जव अनं का एा शुद्ध होत व
अहं ब्रह्मास्मि" में ब्रह्म है ऐसा योगी कहता है
समस्त साधन पूजन जपादिक में अहं ब्रह्मास्मी
निचिर भावयेत्। लिखो है यह भावना विना उ
क्त तीव्र भूमि का साध हो गे ही नहीं हैं इस तैय
विना मार्ग के कुछ भी साधन नहीं होता है। चौथी
मत्वा पत्ति ज्ञान भूमि यही फल भूमि है इसमें
जीव योगी प्राप्त होवै तब ब्रह्म विन् कहता है

२मीं मत्वा पति भूमि में समीप ही वह जो सि
खि उसमें आसक्त न होना १ से असं सक्ति नाम पां
चवीं शान भूमि कहते हैं २ से भव योगी प्राप्त हो
वे तो उसे ब्रह्म विघ्न कहते हैं जिसमें परब्रह्म से
व्यतिरिक्त अर्थ को भावना न कर वह पदार्थ आ
विनी धवी शान भूमि है, ३ से भव योगी प्राप्त
होता है तो वह दू सरे के बोध न करने से भाग
प्रवृत्त होता है नहीं तो एकाग्र स्तूपाकार ही र
हता है उसे ब्रह्म विघ्न ही मान कहते हैं तुर्य गाना
म सातवीं भूमि है ४ से योगी प्राप्त होने से ब्रह्म
विघ्न रिक्त कहते हैं ५ तने साधनाओं से स्वात्मा रा
म चिदा नंद परमा नंद चित्त मय आदि योगी आ
पही हो जाता है काल रहित होता है ॥ अतः नि
श्चलितात्म दीप कलिका स्वाधार वस्त्रादि नि
यो योगी युग कल्प काल चलना तत्त्व च जेगी
यने ताता मोद पदोदधिः समनजः धजादिना
थ. स्वयं व्यक्ता व्यक्ता ३ ॥ धर्म नाम निशं श्रीभी
ननाथं भजे जी भी ननाथ योगीश्वर मूलाधार वं
ध ५ द्वीया न वं ध जालं धार वं ध आदि योगा आ
मसे हृदय क मल में निश्चल दीप क की ज्योति
स ॥ त्वि परमात्मा की कला साक्षात्कार करके
स्वास पुल धरी प्रहर दिन मास क्रतु अयन
वर्ष युग मन्वंतर कल्प आदि निरंतर पुनः

पुनः फिरनेवाला है स्वतः पात्र जिसका ऐसे काल
जो न शनैः लादि २५ जन्मों को पहुंचान के योग्या
से सजीत गी है तथा ज्ञान नंद रूपी समुद्र होकर गुप्त
प्रकट अर्थात् साग्राणिर्गुण होने की सामर्थ्य
रखनेवाला आदिनाथ शिव स्वतः पात्र को भाव
ना विमल करने के अर्थात् से आप ही साक्षात्
शिव हो गया है ऐसे योगीश्वर श्री मोननाथ
को दिन एत नमस्कार रूप से वन कर जाहुं ॥२॥
नमस्कार ॥ ३॥ भक्त्यो गोरक्षो ज्ञान मुक्त भक्त
अभीष्ट योगिनां ब्रूते परमानन्द का एक मुद्रा ॥
योगी गोरक्षनाथ भक्ति पूर्वक उक्त का प्रणाम
कर के पूर्व जन्म के योग से वन से इस जन्म में पू
र्य योग मार्ग को बोध देनेवाला योगशास्त्र कह
ते हैं जिससे योगियों को अभीष्ट भक्तों
दिन मिल गी है तथा परम योगानन्द यदा प्रसा
नंद हो गी है कर्म और भक्ति से जव चित्त शुद्ध
होवे तब योगशास्त्र में अभी कारी होता है ॥
॥ ३॥ गोरक्ष सहितानां चित्तियोगिनां हित का
मया ॥ पुर्वे यस्याव बोधे नु जायते परमं भक्तै
म् ॥ ४॥ योगिजनों के हित के लिये योगिंद्र
गोरक्षनाथ गोरक्ष सहितानां योगशास्त्र
कहा गी है जिसका बोध होने से योगिका

10

67

(परमपद) जीवं मुक्ति होती है जिसका
 यथावह मिलता है जिसमें पहुँच कर पुनः
 सति फिर लौट आता नहीं होता ॥४॥
 सति मुक्ति सो पान मेत काल स्पव अवसर
 । यद्यपि न मनो भोगा दास कर्म परमात्मा नि
 ॥५॥ नवयोगा आससे मन विषय भो
 गो से हृद ज्ञाने परमात्मा (ईश्वर) में
 आसक्त हो जावे तब योगी काल तथा मृत्यु
 को जीत करेगा (७७५५) मृत्यु (मरणा)
 को जीतता है मुक्ति का सो पान (सीछी)
 यही कर्म है और काल की वचन मिथ ही है
 ॥५॥ विजय से विजय ॥ स्वप्न श्रुति कल्पन से
 फल मूल समतं भवता परस्पर योग भोग तस
 तमाः ॥६॥ सजन को संवोधन कर के गो
 रक्षा तथा कहते हो कि हे सतम को छुजनी
 यदहमी कल्प सक्ष के फल ईस योग शास्त्र
 का सेवन करो जिस केशाखा (८८६६६६)
 योगी मृपी विज (पक्षी) अथवा मुनि जनों
 से सविन है और संसार के नीच प्रकार के ताप
 (केशी) को क्षमता का ता है ॥६॥
 आसन प्राण संरोधः प्रत्याहार ध्याना
 । ध्यान समाधि रेता वि योगा ज्ञाने वदति

७
 ७८॥ गा प्रथम आसन सिद्ध कर के कमला
 प्राणायाम प्रत्याहार ध्याना समाधि
 का अभ्यास करता ये योग के द्वा अंग हैं ईन
 के पथ के विस्तार आगे कहेंगे यम नियम
 पक्ष योगी को कम पूर्व क अभ्यास कर के स
 माधि का ज्ञान होता है जिससे निर्विकल्प स
 माधि से राज योग सिद्ध होता है तब विद्वानं
 स्वप्न प्राप्त हो के योगानंद को प्राप्त होता
 है ॥७॥ अथासना नि ॥ आसना निचता व
 ति यावत्तो जीव जतव ॥ एतेषां मरिचि ता
 न्मेदा नृविजा नाति भद्रेश्वरः ॥८॥
 आसन का विस्तार कहते हैं कि जितने जी
 व मात्र अर्थात् चो ॥ १॥ लक्ष्यो नि है ५००
 ही आसन भी ५०० ही के शरी (चेष्टा नुसार है ५
 न के प्रत्येक भद्रों के जानने हो केवल शिव
 जी मात्र है और को ही नहीं जानता ॥८॥
 चतुरशीति लक्षाणां मेकं संमुदाहृतम् ।
 ततः शिवेन पीठानां षोडशानां शतं स्तम् ॥९॥
 चो ॥ शिलक्ष आसनों का भेद भद्रों से न
 जाने जायगे इस प्रकार जान कर कहा ॥ मय
 शिव जीने सर्व साधारण के ईपा करेहुं चो
 रासी (८८) मात्र आसन योग शास्त्र में प्रगट

किये यही सबमें सा है ॥ ६॥ आसने भूः
 समलो भूः धरती तट्टा ॥ ७॥ हन मन एक सिद्धि
 मन प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् ॥ १०॥
 २८४४ आसनों में भी बहुत विचार होने से
 योगधारण करने वालों के ऊपर का हेतु दोही
 आसन मुख्य कहे हैं २ सले २ सग्रंथ में मुग
 मग के लिये सर्वसंमत एक सिद्धासन है
 सरा पञ्चासन सविज्ञा कह जातो है ॥ १०॥
 यो निश्चान कमं धि मूल धरितं क्षणादं वि
 लसो भेठे पाद मध्ये कमेव हृदये स्थाप्य हतुं
 सुस्थिरम् ॥ स्थातुः संयमितेन्द्रियो चल दशा
 पश्मे ॥ सुवोरत्तरं स्तेत न्मोक्ष कपार मे ॥ ५॥ न
 कं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ११॥ सर्वोत्तमं यो
 आसनों में से प्रथम सिद्धासन की विधिक
 ने है कि गदाओ लिंग के संयोगे (कंडली नी
 का) स्थातुं सको वाम पाद को सुडी से दृष्ट पी
 ५८ (५ वाव) के दाहिने पैर को सुडी लिंग के
 ऊपर लगा कर दाव बाव दोनों पैरों को सुडिया नी
 चे ऊपर वाव को जानी है तथा दोनों पैरों को
 अंगुष्ठ जथा ओर गुल्फों के बीच नीचे धिप जागा
 है ॥ त के दाव से यो निश्चान के तले ऊपर के
 बीच दो इन्द्रिय गदा ऊपर स्थित क जाते हैं तदन
 तद हृदय के चा अंगुल ऊपर विवृक (ठोड़ी)

स्थिर कर ओर सम सं इन्द्रियों से हठाकार
 काग्रचित्त कर तथा दोनों नेत्रों में अचल दृष्टि को
 मुकटि (भूमध्य) देखता रहे यह मोक्ष तपी का
 ६ (५ वाव) के कपाट (किंवा ५) को खोल
 कर मोक्ष मार्ग दिखाना है य धा जो कंडली नी
 स रका हुआ मुख्या धा ५ से खोल कर मो
 क्ष मार्ग (सुभ्रमा) के धा ५ मोक्ष स्थात सह
 ५५५५ कमल कर्णिकों तर्गत पामात्मा में
 पड़ने का थार कर ता है यह सिद्धासन है
 ॥ ११॥ वा मोह परिदक्षिणं च चरणं सस्था
 प्य वामं तथा दक्षो रूपरिपश्चि मे न विवि
 ना धृत्वा का ॥ ५८ ॥ अंगुष्ठो हृदये ति
 धाय विवृकं नासग्रं मालोकये ॥ देतं ध
 धि वि का ॥ ११॥ शत करं पञ्चासनं प्रोच्यते
 ॥ १२॥ वां ये कर् (जातु मूल) मे दाहिना
 परे कर्ता न कर के तथा दक्षिण कर् (जा
 तु मूल) मे वाम पाद वैसे ही स्थापन कर के
 दाहिने हाथ को पीठ पीछे धुमाय के दाहिने
 पैर के अंगुष्ठ को ग्रहण कर तथा वां ये हाथ
 को पीठ पीछे धुमाय के दाहिने हाथ ऊपर से ले
 जाय कर वां ये पैर के अंगुष्ठ को ग्रहण कर तब
 विवृक (ठोड़ी) को धानी से लगाय दोनों

नेत्रों से नासिका का अग्रभाग निरंतर देखता
 रहे. यह योगियों के समस्त रोग विकार नाश
 नाश करने वाला वक्ष्य प्राप्त होता है. ॥१२॥
 प्रकारान्त से भी पक्ष सन कहो है ६ सविये
 में ग्रंथान्तर मत से मन्त्रे प्रनाथ के मत को भी
 लिखता है - उना गोचर हो सन्वा कृतं स्म
 स्थो प्रयत्नतः ॥ कर्म मन्त्रे न चोत्तानौ पाणि
 सन्वा जतो दशो ॥ १॥ नासाग्रे विलम्बे प्राजद
 तम्भूते तु जिह्वा ॥ उतम्भ चिवुकं वक्ष्यम्भुत्था
 प्यपवतं शकैः ॥ २॥ इदं पञ्चासनं प्रोक्तं सर्व
 व्याधिविनाशनम् ॥ उल्लंघयेत् केनापि धी
 मता गन्धते वधैः ॥ ३॥ ॥ कर्म (जागु मूल)
 मे पूर्वोक्त प्रकार से चरण - (जे से दक्षिण) कर्म
 वाम वाम में दाहिना चरण काना न अर्थात् पेशे
 के पीठ जानु पर लगी रहे. स्थापन कर के दोनों
 हाथ सीधे मुड़ियों के ऊपर नीचे वाम ऊपर द
 क्षिण हस्त रख के दक्षिण नासिका के अग्रभाग
 पर निश्चल रखे तदनंतर राजपंक्त (डाँखों)
 के मूल दक्षिण वाम दोनों में जिह्वा कर्तव्य
 संभन कर (यह जिह्वा वक्ष्य मूल वक्ष्य का विलम्ब
 पण्डित श्लोक मे कहेंगे) तथा चिवुक (बोड़ी)
 को चा [अंगुल अंतर्दोडका धारी से ला]



यमंदमंदवायुको उठावे यह मूलबंध
 है (यहभी उरुमुखबोध है) यह मन्त्र
 मनमन्त्रेन्द्रनाथके मनका है संपूर्ण
 रोगोको नष्ट करता है जो संसार में भाग्य
 हीन हैं उनको कुल भेदे बुद्धिमान एवं पु
 राणवान् पुरुषों को उरुक्षपास मिलता
 है ॥ ११ ॥ २॥ ३॥ अथ अक्षरानि
 पणाम् ॥ अक्षरके ओं उच्चारण विल
 क्षं को मन्त्रकम् । स्वदेहे येन जान
 न्ति कथं सिद्धिं योगिनः ॥ १३ ॥
 निश्चयनामनासे मनचंचल रहता है ऐसे
 रुकनाहिनि नामनासे योगसिद्धि नहीं हो
 ती । मन रोकने के लिये अक्षरनिमित्त (अ
 वलंबन) अवस्थ होना चाहिये इस हेतु अ
 चक्र सोलह आधा दो लक्ष्य पांच आका
 शये चार प्रकार भेद (सर्व उरुगील) क
 हते हैं कि मूलाचार स्वाधिस्थान मणिपूर
 अनाहत विशुद्ध आशये अक्षर है इन
 का विस्तार आगे कहेंगे आधा सोलह है
 इनके विसेष विस्तार अतिबुद्धि होने से श्री
 गोक्षनाथ ने यहाँ प्राण नहीं कहे और
 इनके प्रकटना विना सर्व साधारण को

बोध होना असंभव है इस लिये जैसा गुप्त
 क्षमा से जाना यहा ग्रंथोत्तरिय मन से प्रकट
 करना है प्रथम आधा ए पादा गुप्त है इस
 पर एकाग्र दृष्टि कर के ज्योति चेतन को रू
 स से दृष्टि स्थिर होगी है १ दूसरा आधा मूल
 धार इस पावों कि एडी से अचेतन करना इस
 से अग्नि दी प्र होगी है २ ॥ तीसरा गुप्ता धार
 इस के संकोच विकाश के अभास करने से
 अपान वायु फिर के वर्ज्य गर्भ नाडी में प्रवेश
 कर विंडु चक्र में जाता है इस से शुक्र संभन
 एवं (वज्रोली) रेत ज्योति में पातन कर के पुनः
 आकोचन क्रम से वज्रोली धार विंडु स्थान
 में प्रप्र करने की सामर्थ्य होगी है ३-४
 पंचम कड़ी या नवम आधा है पश्चिम तान
 आसन बांध के गुदा को संकोचन कर इस से
 मला मूत्र फोम का नाश होता है ५ ॥ छठना मि
 मडला धार जिव से चेतन ज्योति स्वतन्त्र का
 ध्यान करने से एवं प्रशाव के प्रसेना वक्ष्य
 न होगी है ६ ॥ सातवां हृदय धार इस में प्रा
 शा वायु को रोध करने से हृदय कमल विका
 शित होता है ७ ॥ आठवां कंठा धार इस में ठो
 डी हृदय पर दृढ लागाये के ध्यान करने से ८ ॥
 विंगल में वहा हुआ वायु स्थिर होना होगा ९ ॥
 नवम शुद्ध धारिका धार के ठ मूल है इस में जो

दो लिंगा का एक पर से लटकती है ३ नत का जिह्वा
 पहुंचावे गो वलं ध्रु में चंद्रमडल से वहा हुआ
 अमृतरस मिलता है १० ॥ ११ म जिह्वा मूला धार
 इस में खेचरी मुद्रा के प्रकार से जिह्वा ग्रसे मथन
 करे तो खेचरी सिद्धि होती है ११ ॥ १२ हवां जिह्वा
 का अधो भाग धार जिस में जिह्वा ग्रसे मथन का
 के दिव्य कविता शक्ति होती है ११ ॥ १३ हवां ५
 ध्वं वन मूला धार जिस में जिह्वा ग्रस्थापन के अ
 भास से रोग शांति होती है १२ ॥ १४ हवां नास
 का आधा जिस में दृष्टि स्थिर करने से मन स्थि
 र होता है १३ ॥ चौदहवां नासिका मूला धार
 जिस में दृष्टि स्थिर करने से धः महीने के निरंत
 ए अभास कर के ज्योति प्रत्यक्ष होगी है १४ ॥
 पंद्रहवां मूला धार जिस में दृष्टि अचल दृष्टि
 के अभास कर के सूर्य की राशि के समान ज्यो
 ति प्रकाश होगी है १५ ॥ सोलहवां नेत्रा धार
 जिन के मूल में अंगुली से भीचने में वर्तुला का
 ए विंडु समान द्रव्य गुण के समान रंग की ज्यो
 ति है इस ज्योति के देखने का अभास कर के
 ज्योति प्रत्यक्ष होगी है १६ ॥ ये सोलह आ
 धा है अथवा मूला धार १ स्वाधि स्थान २
 भगिा पूर ३ अना हरा ४ विशुद्ध ५ आशा चक्र
 ६ विंडु ७ अक्षे ८ रोधिनी ९ नाद १० नाद

न ११ शक्ति १२ व्यापिका १३ समतीव १४
 धिनीवमं धुनमं १५ ये सौलह (१६)
 भाधार है प्रह्ला तथा आपने में अमेद समज का
 भावना करने से सिद्धि होती है अवयव लक्ष्य क
 हुन है ये दो प्रकार वाह्य आभ्यन्तरिय हे देव के
 कं डं पयोगी नासिका तथा भूमि ध्ये हं पादि
 वाह्य लक्ष्य है मूलाधार चक्र हृदय क मल हं पा
 दि अभ्यन्तर लक्ष्य है अर्ध पांच आकाश हं स प्र
 का है कि प्रथम स्वतर्ग ज्योतिरूप आका
 श है इस के भीतर रक्त वर्ण ज्योतिरूप प्रका
 श है इस के भीतर धुन वर्ण ज्योतिरूप प्रका
 का श है इस के भीतर नील वर्ण ज्योतिरूप प्रका
 तत्वा का श है इस के भीतर विद्युत् (विजुली)
 के वर्ण का ज्योतिरूप प्रकाश है ये
 पांच आकाश है इतने द्वा चक्र १६ आधार
 र लक्ष्य प आकाश १७ में है इन्हें जो योगी
 नहीं पड़वा तत्वा डं सको योगी सिद्धि न हो
 ती ॥ १३ ॥ एक समभं नव धार १४ हं पञ्चा
 धि देवत म्। स्वदे हे ये त जानति कथं सि
 ध्यति योगित ॥ १४ ॥ स्वदे शरीर में
 सपी गृह है इस में सकल वासनाओं का आ
 भ्रम भव है यही स्वमाय हो कर समस्त
 शरीर को चाम रहता है जिस के मुख र नेत्र

नासिक २ कर्ण ३ मुख ४ लिङ्ग ५ योनि ६ धारा
 है तथा पृथ्वी जल तेज वायु आकाश पंच
 तत्त्वों के ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर महाशिव
 अधिदेवता है ऐसे शरीर सपी गृह को जो
 योगी आसीन हो जानता वह योग सिद्धि के
 से पा म करता है ॥ १४ ॥ चतुर्दलं स्यादाध
 रं स्या ॥ धि क्षान्तं च चन्द्रम ॥ नासो दश दलं
 पञ्चसूर्य संख्या दलं हृदि ॥ १५ ॥ काष्ठे स्या
 त्। ओ ३१ दलं भूमि ध्ये दि दलं तथा। मह
 दल माख्या तं ब्रह्म न्ये महा पये ॥ १६ ॥
 चन्द्र जो का पृथक् वर्ण न है कि प्रथम मू
 लाधार चक्र १७ धार में पीले वर्ण का अधो
 मुख कमल है जिस के ४ दलों में व. श. य. स
 बीज शोभते हैं आठों दिशा में आ ४३ रत्नों से
 वेष्टित भीत वर्ण मध्य कार्त्तिक में चन्द्र को
 शा भूमि डं ल के भीतर बायीं के ऊपर आठ
 जिस के पार्श्व (वगल) में (लं) बीज है
 ओं च। हाथ च। मुख का ब्रह्मा को रिम
 र्थ समान प्रकाश मान सर्व डाकिनी शक्ति
 संधुक्त है वही देवी प्रजापति कोणा का
 कामाख्या भी ठ है जिस के मध्ये में पश्चिम मुख
 स्वयं त्रिलिंग है उस के बीच में विजुली

समानचमकवाली साठे तीन फेरे (सप्त)
 से वो छे गहोका सुबुभू॥ के धा॥ को शोक के
 सोया ३ आसर्पि जो सो कण्ड लिनी महाशक्ति
 हे जो से पृथ्वी का आधा प्रशोकने से ही शक्ति
 एका आधा। यह हे विना हम के जोन ओ। ३ पा
 पाय यो॥ के व्यर्थ है हम लिने प्रथम हम का
 को धन का एना मुख है वा॥ दूसरा म्या धिखान
 चक्र लिंग मूल में रक्त वर्ण कर्ध्व मुख वरु
 लवः भूमयः एला २१ इव रोगि से शोमिन
 कमल है शुक्ल वर्ण कारिका में अर्ध चक्र
 का जल में डले है हम के वर्च में (वं) नी
 ज है जिस के पार्श्व (वगल) में श्री वत्स
 को सुभ पीता व एन माला ओ से सो मि
 त चतुर्भुज विष्णु शाकिनी शक्ति सहित है २
 तीसरा मणि पूर चक्र नामि मूल में नील व
 र्ण कर्ध्व मुख दश दल कमल ५० एना नः थ
 दः चः नः पः फः २१ व रोगि से शोमिन हम ध्य
 कारिका में स्वासिका का एने जो मरा डले है
 हम के मध्ये में सूर्य के समान तेज धारी मे अ
 वाहन (३) बीज चतुर्भुज है हम के पार्श्व में
 रक्त वर्ण विभूति भूषित नील वर्ण चतुर्भुज
 लाकिनी शक्ति सहित महाहृद है ३॥ चौथा
 अनाहन चक्र हृदय में द्वादश दल कमल

५ ध्वं मुख करव गा धः ५ चः दः गः भः भः
 ८ ८ ३१ १२ बीजों से शोमिन है ३ सवो क
 रिका में धूम वर्ण चक्र एना वायु मंडल
 के मध्य में धूम वर्ण चतुर्भुज हृदय म्या भूग
 वाहन (४) बीज है इन के पार्श्व में अभ
 य मद्राधा ॥ का के का किनी शक्ति सहि
 त ३ म्या है कारिका के त्रिकोश में सुवर्ण
 वर्ण वाण लिंग है यह पूर्णा गिरि पीठ क
 हाता है ४॥ पाचवां विशुद्ध चक्र कंठ स्थ
 न में रक्त वर्ण कर्ध्व मुख द्वादश दल कम
 ल अः आः ३ ३ ५ कः कः ३ ५ लः
 २ २ ३ ओः ओः ३ अः अः २ १ १ ६ कारिका से
 शोमिन है स्फटिक वर्ण कारिका में
 वर्ण लावा आकाश मण्डल जिस में
 निष्कलंक पूर्ण चंद्रमा है हम मध्य में
 श्वेत हाथी वाहन पाश अभय वर अंकुश
 धारण करता आवास बीज (५) ६ शके
 पाच में शाकिनी शक्ति सहित सदाशिव
 है यह जाल धर पीठ कहाता है ५॥ छठा
 आशा चक्र मूल मध्य में श्वेत वर्ण कर्ध्व मुख
 द्विदल हृदय २१ बीजों से शोमिन कम
 ल है हम के कारिका में शाकिनी शक्ति

हित शिव है कर्णिक के त्रिकोशासे शतर
 लिंगनामा शिवलिंग है यही मनका स्थान
 है कड़ी यात भी इसी को कहते हैं ॥ ११३ ॥
 कर्म सहस्रदलक मन प्रह्लाद धर्म में श्वेतवर्ण
 पूरा चन्द्रसमान मुख परमानंद स्वरूप ह-ले-
 क्ष ॥ ११३ ॥ वरुणो मिश्रित है त्रिकोशा कर्णिक
 कामे पूरा चन्द्रमण्डल जिसके मध्य में विगु
 ली के समान चमकीला परमानंद रूप देवा
 यमान प्रोति है ॥ ११४ ॥ चिदानंद स्वरूप
 परम शिव विराजमान है इनके पार्श्व में सह
 स्र सूर्य के समान तन धारि प्रतोद्य स्वरूप
 अर्धचन्द्रकार निर्वाण कलाप विराजमान है
 इसके बीच में कोटि सूर्य समान तेज धारी राम
 समान मुकुटमणिकी ॥ ११५ ॥ शक्ति विराजमान है
 इनके मध्य में मन तथा लचन से अगम्य
 केवल योग से अभिमानंद स्वरूप से पर
 क्य अति परम शिव पद है जिसको
 परब्रह्म पद कहते हैं विराजमान है जिसके
 निमो मोक्ष अर्थात् पलक को लेने भी च
 ने में स्थिति न्यून ओर नष्ट होनी है ॥ ११६ ॥
 १६ ॥ आधा प्रथम चक्र स्वाध्याय वि
 तीय कर्म योनि स्थान द्वयोर्मध्ये कामरु
 पति गद्यते ॥ ११७ ॥ पहिला मूलाधार स्वा

ध्यात इन दो चक्रों के बीच में योनि स्थान है
 यही कामरूप पीठ है अर्थात् मूलाधार के कर्णिक
 कामे काम पीठ है ॥ ११७ ॥ आधा ॥ ११८ ॥
 स्थाने पंचजेत्र चतुर्दल मूलमध्य प्रोच्यते यो
 निः कामाख्या सिद्धवदित ॥ ११८ ॥ मूलाधार
 (गुदा) में जो चतुर्दलकमल विख्यात है कम
 के मध्य में त्रिकोशा का योनि है जिसकी वेद
 गामम सिद्ध जन कहते हैं पंचाक्षर वाणिसे
 वती हुई कामाख्या पीठ कहा गी है ॥ ११८ ॥
 योनि मध्य महालिंग पश्चिमाभिमुख स्थित
 मूल के मणि वदिमं योजाना जिस योग वि
 ॥ ११९ ॥ पूर्वोक्त त्रिकोशा का योनि में मुख
 मूलाधार के समुख स्वयंभूनाम का के जो महा
 लिंग है उसके शिर में मणि के समान देदीप्यमा
 न विवर्त है यही कंडलिनी जीवाधार शरीराधार
 मोक्षदा है इसे जो समक प्रकार से जाना है
 उसे योग विन कहते हैं ॥ १२० ॥ तत्पंचामी का
 भासे गडिले खेव विस्फुरत त्रिकोशा तस्य
 रं वहेरधो मेलात्प्रतिष्ठितम् ॥ १२० ॥ मेरु
 (लिंग स्थाव) से नीचे मूलाधार कर्णिकामे
 रहता जपहु सुवर्ण के समान वारि एवं वि
 श्रुती के समान चमकवमकवाला जो त्रिको
 शा है वही कालाग्रे का स्थान है ॥ १२० ॥

अस्माच्चोपदेशो गिरनत्ते विश्वतो मुखम्
 । तस्मिन् दृष्टे मदायोगे याता याता विन्द
 ने ॥ २१ ॥ हली त्रिकोणा विषयः समाधिमें
 अनेता विषय (संसार) में व्याप्त होने दारी पर
 मज्जा विप्रकट होती है वहो का वाग्ये का रूप
 है जव मोगी ध्यान धारा समाधिक के कक
 जो वे देर वने लगती है तो उसको जन्म मरण
 नहीं होते अर्थात् अजराम हो जाता है ॥ २१ ॥
 स्वस्वदेवता भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः
 स्वाधिष्ठाना काया दस्मान्मेरुमेवामिधीप
 तः ॥ २२ ॥ स्वशब्द प्राणा (हंस) का बोधक
 है इसका आश्रय स्वाधिष्ठान (लिंगमूल)
 है प्राणा का अधिष्ठान होने से इस ही मेरु का
 गाजा है ॥ २२ ॥ तनुना भाषि वप्रो तो अजक
 न्यः सुसुभाया ॥ तन्नामिम एतलं चक्रे प्रोच्य
 ते भाषि पूरकम् ॥ २३ ॥ ११ मिमें एक के दो है
 जिससे सवा १० व्यापिनी सिरा (नसें) निक
 ली है जो से १० नमें कप को है जो शब्द रस ग
 धः स्वासः श्रमाः शुधाः तृप्तिः कर्माः नेत्रदक्षि
 धारणा (मगजशक्ति) इन १५ कर्मों को अ
 पने रस्थानों में दीपन करती है तथा १० नमें
 नीचे को है वातः भूतः मलः शुक्रः अन्नः पातः
 सको नीचे पहुचाना इनका काम है ओ (चाए
 जिनको गिद्योगाति है को दाहिने बाज दोवा
 ये वगल होकर अगाधो न सूक्ष्म शाखा वन

के सर्वांगों में जाले की नाई रोम रोम प्रतिपूरीत है
 ५० ही के मलो से प्रस्वेद देह के बाहर रोमों में होकर
 आता है जथा ५० ही के मागों से लेप मर्दन दिपका
 र्थ मोना प्रवेश करती है इस प्रकार का माभिके
 ५० से सूत्र में मणि पिराया रहता है ऐसे ही म
 सुम्मा नाडी में पिराया है इस नाभि में ५० लस्थ
 भाषि पूरक कहते है ॥ २३ ॥ धा ५ शौर मदा
 चक्रे पुरा पाप विवर्जित ॥ ताव जीवो ध्रु
 मज्जे वं यावत्तत्त्वं विन्दति ॥ २४ ॥ ६५ यमें
 धा ५ १५ ल अनाहत चक्र है जिसमें नत्वा नीग
 र सत्त्व (जलमोगा र हिन) गाव है ॥ ॥
 नीत होने से पुरा पाप से भी रहित है परंतु
 जव तत्त्वको पहिचान योगाभास से हो जावे
 तव ये गुण जीवन में आते हैं विना तत्त्वज्ञान जी
 व ससृति में प्रमत्त रहकर तारत हो ॥ २४ ॥
 अथ दशनाडी वर्णनम् ॥ कर्ध्व मेख ५ धेना मे
 कल्पो योगिः खगा शिवत् ॥ तत्र नाश्वः समु
 त्पन्नाः सहस्राणां दिस प्रतिः ॥ २५ ॥ लिंगमू
 ल से कप (नाभिके) धनी चे के व के स ६५ सम
 ल नाडियों का मूल (कन्यारिस्थान) पक्षी
 के अंड के समान आकारवाला डिब्बों का मूल
 (कन्यारिस्थान) है इससे व दत्ता (१२)
 हजार नाडी कप (नीचे नि धी होकर सर्वोडा
 व्याप्त है ॥ २५ ॥ ते अनाडी सहस्रे अक्षि स

॥ ११॥ कुर्मोऽथ कलौ देवदत्तो धनं जयः ॥ ३३ ॥
 प्राप्स्येऽपानः प्राणावअपानर समान ३५ पा॥
 ४ व्यान पुनाग ह कूर्म उ क क ल देवदत्त
 धनं जय १० ये द श वायु शीर मे हे ॥ ३४ ॥
 ह दि प्राणो व से नि न्म म पा नो गु द म ॥ ३५ ॥
 समानो नाभि देशे तु क दानः क श म ध्या तः
 ॥ ३४ ॥ व्यानो व्यापी शीरेषु प्रधानाः पञ्च
 कायका प्राणा धाः पञ्च विस्वा नागा ॥ ३५ ॥
 पञ्च वायकाः ॥ ३५ ॥ प्राणा वायु हृदये मे रह क
 र श्वा स वा ह र मीत र्नि कान ता न तथा अत
 पा ना दि को का पी पा क क र ता हे व अपान वायु
 मूला धा मे म ल मूर्त वा ह र नि काल ने का का
 म क र ता हे र सम वायु नाभि मे शीर को त्र ष्ण
 अर्धा तृ य धा स्था त र व ने का का म क र ता हे र
 उ दान वायु को र ठ मे रह क र शीर को वृ धि का
 ता हे र व्यान वायु सर्व शीर मे ले ना धो उ ना
 आ दि अंग धर्म क र ता हे प वायु ना व ने प रं
 द न मे प्रधान ये पांच ही हे शी व योग शास्त्र के
 मत से मुख नासिका हृदय नाभि मे कुं ड लि
 नी के चारों ओर तथा पादांगुल्य मे सर्व वा प्राणा
 वायु रह ता हे व ग्रह्य लिंग क र ता ग ३५ ॥ पे
 ३ कृ ति नाभि द न मे अपान वायु रह ता हे र
 का ॥ नेत्र कै व ना क मुख कपोल मणि व



धमें व्यान वायु रहता है ३ सर्व लक्षितथा
 हाथ पैरों में ३ वायु रहता है ४ ३ दशभि
 क कला को ले कर सर्वांग में समान वायु
 रहता है ५ श्म कारणा से प्राण दिपाच वायु
 प्रधान है ॥ १॥ दिपाच वायु का कर्म जो वर्म
 एवं हृदि में रह कर जो कारण है आग कहते
 हैं ॥ २४॥ २५॥ ३ प्रकारे ॥ १॥ आरव्या नै कूर्म
 उन्मीलने स्मृतः ॥ २॥ कक ए क्षुत क्षुत्तये यो देव
 यो विष्णु मन्त्रे ॥ ३॥ ३४॥ ३५॥ (३५॥)
 निकालना ॥ १॥ वायु का कर्म है नेत्रों के पल
 क ॥ २॥ वा खोलना कर्म वायु का तथा धीं क
 कर ॥ ३॥ ककर वायु का जंभा देव वायु का
 कर्म है ॥ ३६॥ ११॥ गज हा गे मृग चा भि सर्व वा
 पीय ने जयः ॥ ३७॥ ओ धनं जय वायु सर्व शी
 में व्याप्य रहता है मृग शी में भी रहता है अर्थात्
 म में भी वा धी पयं तय ह शी शी में रहता
 है ३८ प्रकारे ५१ वायु आप ही जीव के अ
 भास से कल्पित हो कर मुख इन्द्र का लंब वक्षी
 व को कहते हैं ॥ में सुखी हं ३९ में इन्द्र की ३९
 दिव्य व हार मय जीव को ३९ पाणिनि ३९ ॥ में
 होने से आप ही जीव रूप हो कर समान गति
 यों में फिरता रहता है य अपि अविद्या वच्छिन्न

॥ १॥

॥ १॥

चैतन्य जीव ही है तो इसका धूमना फिरना अ
संभव है तथा पिजे से चंद्रमा तो के पायमान
नही है परंतु इसका प्रतिविंब जल में जिस समय
यह उलस समय उस जल को हिलाया जाय तो
चंद्रविंब हिलता दीख पड़ता है ऐसे ही व्यवस्था
रसे वक्ष वायु जो काष्ठी मना तथा इन ही की
उपाधि जीव चैतन्य में आरोपित कर गिहे ॥ ३७ ॥
आदि प्रो मुजब रोड नय यो च्यलति कानुक
प्राणा मान समाधि प्रलय जीवो नति क्षति
॥ ३८ ॥ जो से कंडुक (गेंद) हाथ से भूमि प
ना डन कर के स्वतः चलता है ते से ही प्रा
ण वायु के स्थान (हृदय) में अपान वायु न
था अपान वायु के स्थान (गुदा) में प्राणा वा
यु के प्राप्त होने में अपान वायु जीव को आक
र्षण कर के स्थिति नही रहने देता जो से जो
दर्शन ने वलिके वक्ष में गेंद रहता है ऐसे ही अ
विद्या (माया) के वक्ष में जीव रहता है ॥ ३९ ॥
प्राणा पान वक्ष जीवो ह्यधो ध्ये च धावति
वाम वक्षिण मार्गिण च च्चलत्वात् न दृश्यते ॥ ४० ॥
जीव का ऐसा से जीवता प्राणा अपान वायु के आ
धीन है इसी कारण से ईश जो पिंगला नाडी के
धार गिर के नीचे मूलधार पर्यंत ऊपर मुख
नासिका धि पर्यंत फिरना ही रहता है इस के

अति चंचल होने से ईशना कठिन हो के प्रा
णा पान वायु के साधन विना वायु नही जी
ता जाता ॥ ४१ ॥ इस के जो ने निगाह वक्ष मने मेधा
न ही होता ॥ ४२ ॥ एतु वक्षो यथा इयेता
गतो प्पाक्ष्यते पुनः ॥ ४३ ॥ वक्ष मथा जीव
प्राणा पाने न क्षम्यते ॥ ४४ ॥ जो से वा जप
शी के ये (में) जो विबोध के हिला के छोड़ देने
पर कंडु जाता सर्व स्वीचते पर फिर (वक्ष) में
आ जाता है ऐसे ही माया के अंश साप ज
न मो ॥ ४५ ॥ के वासन सि वंधा हुआ जीव वृद्धि
की लीन वृद्धि में उपमधि रहित वृद्धि प्रलक्ष
गया हो तो भी प्राणा पान वायु कर के फिर
रिच जा जाता है जाग्रत अवस्था में फिर
प्रवृद्ध हृदय की क्षति विषय में पुनः निवमा
वको प्राप्त किया जाता है ॥ ४६ ॥ आपानः क
र्षति प्राणां प्राणो पानं च कर्षति ॥ कर्षा धः
संस्थिता वेतो संयोजयति योगवित् ॥ ४७ ॥
ऊपर से आकर्षण कर के है योगा आसी पु
न्य प्राणा पान से ऊपर से आना चक्र ग
त प्राणा वायु नीचे मूलधार स्थित अपान वा
यु को तथा मूलधार गत अपान वायु आना
चक्र स्थ प्राणा वायु को परस्पर अपने २ ओर
आकर्षण कर के है योगा आसी पुन्य प्राणा
पान से ही को जो कंडु र योग (जो डना)

कहते हैं इसी योग जो देने को हठ योग कह
 होते हैं जो सूर्य चंद्रमा ऐक्य कहते हैं ॥
 हकारेण वाहियानि सकोरा विरोधुनः
 । हंस हंसे तपुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा
 ॥४२॥ अक्षराणि त्वहोत्रे सहस्रांशेक
 विंशतिः ॥ अक्षरं संख्या विन मन्त्रं जीवो ज
 पति सर्वदा ॥४३॥ प्राणा वायु सात्म्यको प्रा
 ण होरहा चिदा मास जीव हकार के स्वाधि
 क्षान चक्र से उत्पन्न होता है और साकार क
 क मूलाधारादि चक्र में प्रवेश कर रहा है सर्व
 प्रकार हंस मन्त्र (अजपा गायत्री) का ज
 प जीव निरुत्पन्न होता है रहता है अर्थात् स्वा
 सवाहर निकलने में हकार भी प्रवेश होने
 में सकार ५ स्वार होता है सूर्योदय से पुनः
 सूर्यास्त पर्यंत ६० घंटे में इस मन्त्र की जप सं
 ख्या २९६०० होती है ॥४२॥ ४३॥ अजपा नाम गायत्री
 योगिना मोक्षदायिनी ॥ अत्मा संकल्पमात्रे
 ॥ सर्वपाप प्रपद्यते ॥४४॥ अनया सहस्री
 विधा अनया सहस्रो जपः ॥ अनया सहस्रं रा
 नेन भूतेन भविष्यति ॥४५॥ यह योगियों को
 मोक्ष देने वाली अजपा नाम गायत्री है इसके
 संकल्प मात्र से योगी समस्त पापों से मुक्त

जाना है संकल्प की विधि यह है कि सूर्योदय
 से पहिले हो शायतन से ५० क (५) घंटे तक पहन
 हाथ पर मख पक्षा लगवा (शुद्ध आसन में
 बैठ आचमन करके संकल्प कल्पनाई सप्रका
 र कर्त्ता कि अघे ह पूर्व धु हो रात्र चीन गाला
 पुष्पिः सूर्यो ध्या सतिः स्वात्मना कप ५३॥
 धि कै क विंशति सहस्र संख्या का जपा गाय
 त्री जप मूलाधार स्वाधिक्षा तमणि पूरा होता
 विशुद्ध सा चक्र प्रक्षर स्थास्थिते भोगा पति
 ब्रह्म विष्णु मधु प्रगी वपु रूप (मात्रमभ्य साधिस
 स्वती लक्ष्मी गौरी प्राणा शक्ति शान शक्ति वि
 ध्यक्ति समेते भोग्य चा संख्यं पद्धातं सत्सहस्रं
 अत्सहस्रं सहस्रमेकं सहस्रमेकं सहस्रमेक
 म् अजपा गायत्री जपं प्रत्येकं निवेदयामि धृति
 निवेद्य पुनरुध प्राप्तः कालमारभ्य द्वितीय प्रा
 तः काल पर्यंत नासा पुष्पिः सूर्यो ध्या सतिः स्वा
 सात्मकं अक्षराणि धि कै क विंशति सहस्र संख्या
 कमजपा गायत्री जपमहो रात्रेशा हंकारि ५३
 जिजायमान जप संकल्पे ध्यात्वा स्वस्वतु मोक्षे
 । इस अजपा के समान जीव ब्रह्म का अभेद कह
 ते वाला और कोई मन्त्र नहीं है यह अल्प भ्रम
 में उत्तम फल देने वाला है इस के समान और जप
 नहीं क्योंकि प्रातः काल संकल्प मात्र कर्त्ता है ५
 पुरातन लोग पीने चलते उठते बैठते सोने

दासवज्रवस्थाओं में उत्तमपञ्चापसे होना रह
 ना है। ओ॥ अर्धेनागमनकएनेवाला उसके स
 मानअपकोई शान शास्त्र पहिले भी नही था
 ओ॥ पीछे हेनेवाला भी नही है। ॥४४॥ ४५॥ ८८३॥
 कुंडलिनी का समुद्रनागायत्री प्राणाधारिणी
 । प्राणाविद्या महाविद्या यत्नां वेनिमनेदवित
 ॥४६॥ कुंडलिनी महाविद्या शक्तिसे उत्पन्न हो
 रही तथा प्राणावायुको धारणा करने वाली य
 ही उत्तमपञ्चापजी है जो वात्माको शक्ति प्राणा
 विद्यास्वरूप भी यही है शक्ति का एतद्वा वि
 द्याभी इसको कहते हैं इससे जो योगी पहिचा
 नसके वही योग शास्त्राभ्यासका तात्पर्य जान
 ता है ॥४६॥ अथ शक्तिचालनम् ॥ कन्या
 र्वं कण्ठली शक्तिरक्षधा कण्ठलाहनि रावृक्ष
 धारमुखे निरूपं मुखे नाच्छाद्य निरुद्धा ॥४७॥
 अब कुंडलिनी के मेवरवोलेन निमित्त स्रव
 स की अधिकता प्रकट करने के लिये कुंडलि
 नी का ओ॥ प्रकाश भी स्थापन कहते हैं कि समस्त
 ७२००० नाडियों का ईश्वरनिस्थान पूर्वोक्त चंद
 है इसके ऊपर ए॥ पू॥ चक्रवर्ति का मेआ
 ठ धनकरके वेष्टित हो रही कुंडलिनी शक्ति
 प्रक्षालने प्रध्वंश के मुखको रोकके सर्वदा रह
 ता है ॥४७॥ येन दारणागी वं प्रक्षालनामना
 मयम् ॥ मुखे नाच्छाद्य न दूधार्द्रं प्रमुखापमे

ध्वरि ॥४८॥ प्रवृद्धा वृद्धियोगे न मनसाम
 हता सहाः सचीवः ॥४९॥ मावायत्र जत्पूर्व
 मुमुक्षुमाया ॥४९॥ निममार्ग (मुमुक्षुमा)
 कारके नमम ॥५०॥ के३ः खहरा ॥ कनेवाला
 अखंडवृक्षानंदपदमिलता है इस मार्गको ऐक
 के मोह दुई कुंडलिनी प्राणावायुके धौकने (५
 तेन न करने) मेवा नागिके ज्योतिके संवेध
 से प्रवृद्ध (जाग्रत) होकर मन एवं प्राणावायु
 क सहित होके मुमुक्षुमा नामा मध्यमाडी से
 ऊपर (को) जाती है जेसे सूची (सुई) अपने पर
 पिरये नागे सहित होने से वृक्षके अनेक भूजी
 क मध्य में प्रात होती है तेसे आपही सृष्टि उत्प
 न्न आपका (के) अर्धार्ध तथा ५१ के देवता प्रभ
 ति सकल प्रपंचको उत्पन्न करने के ऊपर सह
 स्तदल कमज के समुद्र वंद होकर जाती है ॥४८॥
 ॥४९॥ प्रमुमुक्षुमा ॥ प्राणापञ्चापने मुनि भा
 प्रा॥ प्रवृद्धा वृद्धियोगे न वृजत्पूर्व मुमुक्षुमा
 या ॥५०॥ सोने सर्प के समान कुंडलिनी अपा
 नवायुसे धमिल (धोकी गई) जो भूवाधा (में
 रहनेवाली का नागिके संवेध से प्रवोद्यमा
 यके अति योग (जो) से चलनेहु इस सर्प के स
 मान कठिनाति होकर कमलनाल के गेहूँ (म
 र्ज) समान सूक्ष्म ज्योतिर्मय स्वरूप होकर
 मुमुक्षुमा मार्ग से ऊपर (को) जाती है ॥५०॥

३६। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०। ५१। ५२। ५३। ५४। ५५। ५६। ५७। ५८। ५९। ६०। ६१। ६२। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७। ६८। ६९। ७०। ७१। ७२। ७३। ७४। ७५। ७६। ७७। ७८। ७९। ८०। ८१। ८२। ८३। ८४। ८५। ८६। ८७। ८८। ८९। ९०। ९१। ९२। ९३। ९४। ९५। ९६। ९७। ९८। ९९। १००।



नं द्वावाक्रमसञ्ज्ञानवागिरागं क द्वम्ले ल
 वरात्पागीक्षीभोजनमाचरेत् ॥५३॥ प्रह
 चागिमिताहातिमागीयोगपरायणाअव्य
 पूद्येभवेत्तिष्ठोनागकार्याविचारणा ॥५४॥
 शक्तिचालनमुद्राकेअम्मासोकोनेयमकहने
 हे किप्राणायासादि कर्मसेनोअंगोभेखेव
 (पसोना)अनाहेकसमेअंगमर्दनकरेवा
 राओ(खदायेवोरसतरवावेकेवलकुम्भ
 नखायाकरभोजनभीएकप्रमाणसेकरे
 प्रहचयेखरेवकामजोधसेरहितहेमा
 गवाहोवेयोगाभ्यासका मात्रअम्मासक
 खेहसप्रकारनियममेंरहकरयोगाभ्याससे
 शक्तिचालनमुद्राकाअम्मासकरेएकवर्ष
 कुम्भ(जवहच्छाकरेनभीकुडालेनीकेअम्भ
 त्यानकीसामर्थ्यहोगीहेहसमेसिद्धिहो
 गीहेवानहींऐसासंदेहनकरनाअम्माससे
 अवश्यमेवसिद्धिहोगीहेवानहींऐसासंदेह
 नकरनाअम्माससेअवश्यमेवसिद्धिहोगीहे
 ॥५३॥५४॥ मुस्लिमधोमधुराहातिचतुशोशवि
 वर्जितः। मुअनेस्व(संप्रीत्येमिताहा)सउच्य
 ते ॥५५॥ मिताहारकेवलक्षराकहोहेस्लिम
 (सविकण)मीठाभोजनकरेअम्भ(खदा)ओ
 रलवणवर्जितकरेदोभागअन्नएकभागजनखा
 वेकौचाभागाउदमेंवायुसंचाकेलियेछोउद
 वेदेवताकोनिवेदनकरकेकुम्भान्नभोजनकरे

६५ प्रका विधि करे हा हा योगी मिता हा नीक
 हा गोहे ॥ ५५ ॥ कन्दो ध्वे का रा ग लि शक्तिः शुभ
 मोक्ष प्रदायिनी ॥ वन्द्या य च मुखानां यत्ना
 वेति स वेद विता ॥ ५६ ॥ के व के क प मणि पु
 चक्र के कर्णिका मं प के रे हो क के ड ला का के
 ड ति नी शक्ति हे य ह मूर्ख जनों को वा वा जम
 मा रा म प वे ध न दे गी है औ योगा मा ल जान के
 ले को शक्ति चालन का जमा मजम म रा र प
 वन्द्या य के मोक्ष दे गी है ॥ ५७ ॥ अथ श
 क्ति चालन विधि ॥ न्यां न रे विशेष ॥ गङ्गा य म
 न योर्मध्ये वाला रा ग प स्थिनी ॥ वला का
 रा गङ्गा य म विधि ॥ ५८ ॥ मं प ५ म् ॥ ११ ॥ श
 क्ति चालन मे ग्रन्थांता मने ल कुध विशेष क
 हने है कि गङ्गा य म न के वी च न प स्थिनी वा
 ल रा ग वला का र के के के ड लि नी को ग्रे ह
 रा करे तो विष्णु के प म प ५ (५ ५ ५ ५) में प्रा
 पु का गी है ॥ ११ ॥ १५ ॥ म ग व नी गंगा पि ग ना
 य म न न दी ॥ १५ ॥ पि ग ल योर्मध्ये वाल रा ग
 च व रा ड ली ॥ २१ ॥ १५ ॥ म ग व नी वा म श्वा ला
 ग डी रे श्वर्या दि स प न गंगा व क्षि रा श्वा ला
 पि ग ना ना म्नी य म न है ॥ ६१ ॥ के म ध्ये ना डी म्भ
 म्ना वा लं है ॥ २१ ॥ कु ध्वे कि न लि मा गे न
 वि ला च ग कु ल म् ॥ श्वे नं तु म्भ ड लो प्रो गे
 व क्षि सं व र ल क्ष रा म् ॥ ३१ ॥ मूल स्थान ले वि

तस्मिन्मात्रकपलाभिसर्वमेवकेनधर्मो-
 नवांगुलविकला। ५। अंगुलआयाममशी
 केअंशकाएस्तेतर्गकोमलवस्त्रवेष्टिगमे
 साकंवेहे॥६॥सागिवज्रासेनपाडेकराया
 धारयेद्वष्टा। ७। लफदेशसमीपेचकन्देनज
 प्रपीडयेत्॥८॥वज्रासनकाकेहाथोसे
 पेरोंकोपठीपकडकेदस्थानमेवद्वलगाय
 पीडनको॥९॥वज्रासेनस्थितोयोगीवान
 यिज्वाचकराडलीमृ॥कूर्वादनताम्रस्ता
 कराडलीमाधुबोधयेत्॥१०॥योगीवज्रास
 नमेवेठकेडलिकोशक्तिचालनमुद्रामेन
 लायमानकरेनवमस्यानामकेमलाणां कुं
 डलिनीशक्तिकोशीध्वजवोधिगुकोमप्रा
 भानोराकुञ्चनंकार्योत्कराडलींचालये
 तती॥११॥मृत्युवक्रगतस्यापितस्यमृत्युम
 यंकृतः॥१२॥नामिस्थान(सूर्य)कोआ
 जंछानकरकुंडलीकोचंलावेक्षकाअ
 भाससिद्धहोगायतोमृत्युकेमुखमेपा
 डगयाहोगोभीकसकीमृत्युनहोवे॥१३॥
 मुहुर्तेद्वयपर्यंतनिर्भयंचालनादसौ।
 कर्त्तव्यमाहममभ्यतेकिञ्चित्सुभ्रमागंधां
 मभुजना॥१४॥चारधडीपर्यंतनिर्भय
 होकरशक्तिचालनकरेनोकेडलिनीक
 ठेकमुमुमा॥मेकपलाकोडकताहे॥१५॥

तेन करऽलिनी तस्याः सुषुम्णाया मुखं
 ध्रुवम् । गहनित्तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्णा
 व्रजति स्वतः ॥ ८ ॥ १ स से के राऽलिनी (जो
 सुषुम्णा शोक वेदी है) सुषुम्णा के द्वा (को
 छोड़ देगी) तव प्राणा वायु आप ही सुषुम्णा
 में प्रवेश करती है ॥ ८ ॥ तस्याः सञ्चालने
 त्वं सुखमुपामहन्वती नृ ॥ तस्याः सञ्चालने
 नेव योगी रोगः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ इसके निम्न
 प्रति सुषुम्णा द्वा में सोती कंऽलिनी को चला
 वे तो योगी सर्व रोगों में दूर जावे ॥ ९ ॥ यतः
 आलिता शक्तिः स योगी सिद्धिमाप्नोति ॥ कि
 मत्र बहु तोक्तेन कालं जयति लीलाया ॥ १० ॥
 जिस योगी ने शक्ति चालना किया वह अणि
 मादिसिद्धियों का पात्र होता है । ओर विशेष मा
 हात्म्य क्या कहा जाय वह काल (मृत्यु) को स
 हन ही जीत लेता है ॥ १० ॥ करऽली चाल यि
 ता तु मन्त्रां कुर्याद्विशेषतः ॥ एवमभ्यस्य तो
 निम्न यमितो यमभीकारः ॥ ११ ॥ जो यमिनि
 त्तु कंऽलि को चलाय के मन्त्रा कुं मन्त्र का अभ्यास
 विशेष करके करता है तो उसे यम का मय नहीं
 होता ॥ ११ ॥ १ यं तु मध्यमा नाडी दृष्ट्वा आसितयो
 गिनाम् ॥ आसनप्राण संयाममुप्राप्तेः स एव

भवेत् ॥ १२ ॥ योगीयों को दृष्ट्वा आसने
 आसनप्राण संयाममुप्रादिकार के म
 ध्यानादी (सुषुम्णा) सन होना ही है ॥ १२ ॥
 अथ महामुद्राः ॥ महामुद्रां नमो मुद्रां कडीया
 नं जलं च ॥ मूलवन्धश्च यो वेति स योगि
 मुक्तिमाप्नोति ॥ १३ ॥ महामुद्रा व खेची मुद्रा
 २ कडीया न वंध ३ जलं च ४ मूलवंध पश्को
 क (केश) किंचालने के रोगों योगी मुक्तिमाप्नोति
 होता है । शक्ति चलाव न ही इसके ज्ञान के का
 प्रमाण यह है कि जो मेशीर में पिपीलीका (चोंटी)
 चलने में इसकी गांठें से जान होता है कि
 कुछ जीव चलता है से ही सुषुम्णा में वायु ज
 व चलने जाना है तो शक्ति चलाय मात हो गई
 जानता । शक्ति चालन मुद्रा के पीछे भी कर्म पमुद्रा
 करनी योग्य है ॥ १३ ॥ वक्षोऽप्यसह दुःप्रपीड्य म
 चिरं यो निच वामां धि रणा ॥ हस्ताभ्यामनुधार
 येन प्रसरितं पादं तथा दक्षिणम् ॥ ३ ॥ पूर्य च
 सनेन कक्षि युगले वक्षोऽनै रेव ये देवाः ॥ आधि
 विता शिरी सुमहती मुद्रा नृणां कथ्यते ॥ १४ ॥
 महामुद्रा को विधि कहते हैं कि हृदय में चिवुक
 जोर से धारण करके वाम पाद की सुडी से योनि
 स्थान को अल्पतः दृष्ट्वा जोर से अचेत वाहिना पाद
 लेवा करके दोनों हाथों से पाद मध्य भाग पकड
 के दृष्ट्वा शोकेत वपे में पूरक विधि से वायु मेरु

धकातयथाशक्ति कंभककरके मन्दमन्द
 वायुको रेचन करे यह योगी जनका समलरो
 गनाशक महा मुद्रा कहि है ॥ पचा चन्द्रे ज्ञान
 समम्भस्य मूर्त्यो गेनामसे तु नः ॥ यथगुणा
 भवेत्संख्यानतो मुद्रा विमर्जयेत् ॥ ५५ ॥
 ईस महा मुद्रा के अभास में प्रथम वामांग से अ
 भास करके पीछे दहिने अंग से करे तेस ही प्रा
 राया मभीका तारे हे जव दोनो ओर के अभास
 संसे प्रा राया मही मात्रा वराव हो जाय जव
 मुद्रा धो डीत वत क डक अभास करे ते रहता
 ॥ ५६ ॥ नहि पथ्य म मथ्य वारमा सर्वे पिन
 रिता ॥ अपि मुक्त विषं चोरं पोयूयामि वगी
 र्थते ॥ ६० ॥ क्षमकृष्ट मुद्रा न गुत्मा जीर्ण
 पुटोगमा ॥ रोगा लम्पक्षयं याति महा मुद्रा
 च यो भवेत् ॥ किं धिते यं महा मुद्रा महा सि
 धि करि नृणां ॥ गोपनीया प्रयत्ने वत देया
 यत्न कस्यायेत् ॥ ६२ ॥ जव महा मुद्रा का अभा
 स दृष्ट हो जाय तो पथ्या पथ्य का विचार किये नही
 रहता मिष्ट लवण तिक्त आदियों का स्वाद कष्ट
 नहि रहता जो (संत न हृदय वा मिलाय के कति
 म विवेक क्षति म विषे होता है) संयोग विरुद्ध
 वस्तु वा धार विष भी खावे तो अमृत के समान
 पच जाता है तथा उदावर्त गुल्म अजिर्ण क्षय
 कृच्छ आदि रोग समान शान्त हो जाते हैं इस के

६९
 अभासी को महा सिद्धि देने दारि य हम हम मुद्रा
 कहि है इस वडे अतसे गुप्तरखना प्रकाश करे
 ससामर्थ हो नही है इस हेतु अनधिकारि अ
 योग्य पुत्र १०८ दांभिक आदि जो लै के ल को
 न देना ॥ ६० ॥ दवा ॥ ६२ ॥ इस का विचार ग्रंथोत
 से पाठकों के मुखो ध्याये लिखते हैं ॥ ६३ ॥
 पाद मूले नवमि न योगि संपी अदक्षिणाम् ॥
 प्रसारितं पदं क्षण्वाकारम् ॥ ६४ ॥ ११ ॥
 वाम पाद को हड्डी से मुदा ओर ही अके मध्य
 में यो निस्थान को रोक के दाहिना पैर लेंवा
 पृथ्वी में फैलाय जो से हड्डी म मिर्मरे हो ॥ अं
 शुली के ची दंड के नाई रहे नव हाथों के अंगुष्ठ
 ओर नर्जनी से दाक्षिण पा दांगुष्ठ पक ड के धा
 र कर ॥ ११ ॥ करे वन्द्यं समाप्य धाये
 धायु मूर्ध्वगतः ॥ यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाका
 रः प्रजायते ॥ २० ॥ नदने न कंठ में जाले धर वे
 ध कर के वायु को कम (सुख म्मा में धारण को इस
 से मूल वेध भी हो जाता है जहां यो निस्थान को भी ड
 न ओर जि हा वेध कर के मूल वेध हो जाता है ॥ २॥
 त्रुज्वी मूला तथा शक्ति कर ड वी स ह सा भवेत् ॥
 नदा माम ॥ २॥ वस्थानायेत विपुला म्रया ॥ ३॥
 जैसे सर्प दंड के प्रहा से दंडाकार हो जाता है ऐसे
 ही कंडलिनी शक्ति भी कठिलता को छोड़ कर ह
 स मुद्रा से मूल हो जाता है ओर कंडलिनी बोध ले

सुभाषा में वायुका प्रवेश होता है तब दोनों को
 प्राणिक विद्योग से १५ पिण्डों के आश्रय जिसके
 इसी मरणावस्था होती है ॥ ३॥ ततः शतैः ३॥
 मेरे व. रचये नव वेग नः ॥ महामुद्रां चने बैल वद
 निविब्रजो तमा ॥ ४॥ ३५ रवतु महामुद्रा महामि
 चेऽप्रदर्शिता ॥ महामुद्रा दया दोषः शायते म
 रणादयः ॥ पा ॥ तदनंतर शतैः शतैः रचन कर
 वेग से करने में बल हा नि हो गी है ॥ ३५ से महामु
 द्रा आदिना आदि महामिच्छा नोदरवा है ॥ ३५
 के अभास से महामुद्रा श्रम विधारा गच्छे वादि
 क शोक मोहादि दोष क्षीण होते हैं तथा जरा
 मरणाभी नही होते ३५ से शान्ति न ३५ से महामु
 द्रा कहते हैं ॥ ४॥ पा ॥ चन्द्राक्षे तु सममस्य सूर्य
 याक्षे पुनरुत्पत्ते ॥ यावन्तुल्यमवेत्तु सखातनो
 मुद्रां विसर्जयेत् ॥ ५॥ ३५ का नाम कहते हैं कि
 (चंद्राग) वामभाग में अभास कर सूर्यो (व
 क्षिराभाग) में अभास कर ओ (वामाग) भासके
 पीछे जव नौ वामाग में कुंभक की संख्या समाप्त होत
 वतो अभास करे ॥ ५५ संख्या समाप्त होत व महामु
 द्रा विसर्जन करे ३५ में थ ३५ कर्म है कि काम
 पाद की सजी को योगि स्थान में लाया व हा नि ॥
 पाद लवा फेलाय अंगुष्ठ को हाथ के अंगुष्ठ नर्ज
 नी से पकड़ के अभास करे यह वामाग भास
 है ३५ से पूरित गो वायु सो वामाग में लाया

वामपाद लवा फेलाय अंगुष्ठ को हाथ के अ
 ७ ३५ नर्ज नी से पकड़ के अभास करे ३५ से पक्षि
 १॥ गामास कहते हैं ३५ से पूरित वायु पक्षि
 १॥ गी में रहता है ॥ ६॥ नहि पच्यमपच्यं वा
 रसाः सर्वमिनी रसाः ॥ अपि मुक्तं विषं घोरपी
 यूथमिव जीर्यते ॥ ७॥ ३५ कहते हैं कि महामु
 द्रा के अभास को पच्यपच्य विचार नहीं है
 चतुःअम्लादि समस्त रसादिक जो स्वाद वही पच
 जावेगी ॥ सवासी (पर्युषित) सब पचन था ३
 जी (घो) विष आदि भी अमृत के नाई पच जा के
 ॥ ७॥ ३५ थ ३५ मुद्रा वर्तमाना जी पुरोगमा ॥
 तस्य दोषाः क्षयं याति महामुद्रां तु यो असेत् ॥ ८॥
 जो पुरुष महामुद्रा का अभास करे ३५ से अयरे
 १॥ ३५ ७॥ म. रोग अजाती. ज्वर प्रमेह ३५ से
 ग आदि कमी न हो के ॥ ८॥ कथि जेथ महामुद्रा
 महामिच्छि की १॥ ८॥ गोपनीया प्रयत्नेन न
 देया यस्य कस्यचित् ॥ ९॥ ३५ ७॥ अभासी का
 अरि मादि महामिच्छि देने हा ३५ महामुद्रा कही
 है ३५ से मुद्रा रचना अर्थात् अगधिकारी को न देना
 ॥ ९॥ ३५ से चरी मुद्रा ॥ कपाल क हो जिहा
 प्रविष्टा विपरीत माना मुवोरता गता दक्षि मुद्रा
 भवति रेवती ॥ १०॥ ३५ से चरी मुद्रा कि विधि कह
 ते है कि जिहा के उलटी फिराये के के ३५ में जो
 धिप्र (दिगाले पा) या ने मुद्रा धारित हो ३५ में

प्रवेशाकाराणां गदनेन रम्यमधमिति श्रुतवद्वि
 स्थिरकाग्रेसरेवेचरीमुद्राकहेते ॥ ६३ ॥ न
 रोगान्तरात्तत्प्राप्तिकेन ध्यात्वा ॥ न मू
 र्ध्यानुभवेन तस्य यो मुद्रां वेति रेवेचरीम् ॥ ६४ ॥
 जो योगीगुरुपदिष्ट मार्गकरके देवन. दोहन. क
 र्त्तव्य. (ये कर्म आगे कहेंगे) प्रकार से रेवेचरी मु
 द्राको लङ्घन काल पर्यन्त अभ्यास करणो है काल के
 रोग. निद्रा. क्षुधा. दृष्टि. मूर्धा. जो रम्यात्कुल्य
 कच्छद्र (होते हैं) ॥ ६४ ॥ पीडागेन च को केन नव
 लिप्तेन कर्मसात्ता वाध्यागेन स केनापि यो मु
 द्रां वेति रेवेचरीम् ॥ ६५ ॥ जो योगी रेवेचरी मुद्रा
 जान के कसे अभ्यास करके सिद्धि करता है वह
 शोक से पीड़ित नहीं होता. कर्म के फल में वंचन
 नहीं पाना. जो रम्यात्कुल्य आदियों से भी वाधा
 नहीं पाना ॥ ६५ ॥ चित्त चलति तो यस्मात्प्रकृ
 चरति रेवेचरी ॥ न ते रेवेचरी सिद्धा सर्व सिद्धि
 र्नामस्तथा ॥ ६६ ॥ जिस कारण न हो पर प्रह्लादि
 रेवेचकाग्र होकर मन वृद्धि चित्त. रम्य विवेकि
 रणो है तथा गुरुभी के मूल दिवा का शर्म रह
 क प्रह्लाद प्रीति. चंद्रकला मृग का पान कर
 ती है इस हेतु से मन वृद्धि के विषय वंचन निव
 रण करे नही रेवेचरी मुद्रा समस्त सिद्धि जनों
 से अत्यंत प्राप्ति (नमस्त) है ॥ ६६ ॥ विदुमू
 लं शरीराणां शरीरान्तरं प्रतिष्ठिता ॥

भावयति शरीराणां मापादनल मस्तकम्
 ॥ ६७ ॥ शरीरका मूल (कारण) विंदु है तसे
 शरीर का हो पाद से शिर पर्यन्त समस्त नाडी
 गाल विंदु से चेत हो रहो है. इसी हेतु म
 की सजीव स्वकर्म सामर्थ्य रहती है. अर्थात् स
 मस्त नाडी विंदु के आधा (मैं है) ॥ ६७ ॥ रेवेच
 री मुद्रा या येन विवेकाले को ध्वजः ॥ न त
 स्म शरीरे विन्दुः कामिना निद्रितस्तथा ॥ ६८ ॥
 जिस योगी के कठना लोक दिप्रले विको कर्म
 आकाश विवे रेवेचरी मुद्रा से लोक लिया तो
 चंद्रा मृग के तसे उस योगी को कामिनी (
 स्त्री) आलिंगन करे तो भी उस काम न चला
 यमान नहीं होता है तथा विंदु न ही गिरा हो
 ॥ ६८ ॥ यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावत्तस्य म
 यं कृतः ॥ यावदध्यानमो मुद्रा तावद्विन्दुर्न ग
 द्यति ॥ ६९ ॥ जब लो देह में विंदु स्थिर है, ताव
 त् मृग को मय नहीं होती. विंदु का स्थान यो
 मय कहें इस से काल की गति नहीं है. जब लो रेवे
 चरी मुद्रा रहते नव लो विंदु को मय न हो नही गि
 रता. इस के स्वस्थान स्थिर होने में काल का वश न
 ही चलता ॥ ६९ ॥ चलितोऽपि यदा विन्दुः संप्रा
 प्त्य दृष्टा नमृ ॥ प्रगत्यूर्ध्वं ह्येत शतयाति
 क्षो यो विमुद्रया ॥ ७० ॥ कदाचित् सकाग्र न हो

तेसे निंडका रेना मिस्थान सूर्य मेडल मेपहुं
 चगला नो यो निम प्राकर के कंडलि ती शक्ति को
 कम (५४) य के डल के आजा त से ५४ विंडु पुनः
 कम (५५) के अपन हो स्थान मे प्राप्ति हो क स्थि
 ११६ गोहे ॥ ७० ॥ म पुन वि विद्यो विन्दु पा ॥ १५
 रो लोहित स्यात् ॥ पारा ३२ ॥ ३० मिम्या हुलो
 हितार जो महारज ॥ ७१ ॥ ५४ विंडु दो प्रकार
 का हो गोहे सक्त गो पां ३२ वर्ण मिसे ३० रक्त ह
 ने है दूसरा (लोहित) रक्त वर्ण मिसे महारज क
 हो है ॥ ७१ ॥ विन्दु प्रवल का शो ना मिस्थाने
 स्थिते ॥ ७२ ॥ शशि स्थाने स्थितो विन्दु मयो रै लो
 मुकुल मम् ॥ ७३ ॥ ते लामिलाय के मिंदूर (हिं
 पुल) का प्रव ~~स्वर्ण~~ (रस) के समान रज
 सूर्य स्थान ना मि मेडल मे १६ गोहे तथा विंडु
 (वर्ण) चंद्रमा के स्थान के रवे शो ५३
 रक्त मे स्थि १६ गोहे ३० दो तो का रे क अ
 पन कुल महे ॥ ७२ ॥ विन्दु शिवो रजः शक्ति
 श्रद्धो विन्दु जो रवि ॥ अ नयोः संगमा देव प्रा
 पते पाम पदम् ॥ ७३ ॥ विंडु शिव रजः शक्ति
 हे ३० के सक हो ने मे योग सिद्धि हो क पाम
 पद मिल गोहे चंद्रमा सूर्य का (पारा वायु
 अमान वायु का जीवात्मा पामात्मा का) स
 क का ना य हो ६० योग पद का अर्थ है ॥ ७३ ॥
 वायु शक्ति चार सा प्रेरित नु य पार ५३ ॥



2404-26006
212/15/16/2013 X

२०५

14 26806

268113

846611

10. 11. 1876

2964 - 2806

206 268113

26/10 26536

M. G. Smith

15485W131414T

Ms. A. 9. 2. 6. 7. 5. 14

2564 26806

ms 26836

ध्यानि विन्दोः सौहेकारं भवेद्विष्यं वपुस्तनः
 ॥७४॥ शालिवाहनविधिसेवायुक्तेजव
 रजविंदुकेसाधयेकपक्षेप्राप्तहोगाहेतवशा
 रदिव्यहोगागोहे अर्थात् ३ स अग्निजलाग्नि
 नही शस्त्रसे कहना नहीं ॥७४॥ शुक्रं चंद्रम
 संयुक्ते रजः सूर्य सा संयुक्तम् ॥ तयोः समसे
 कारं योजाना निसयोगविन् ॥७५॥ शुक्र
 विंदु रूप हो चंद्रमा से मिलाओ रजः रूप
 होकर सूर्य से मिलाई न के सम से कय
 (चंद्र सूर्य स्व रूप विंदु रज के सम सत्व भाग)
 को जो योगी जानता है वह योगविन् कहागा
 हे चंद्रमा एवं सूर्य के योग को योग कहते है
 ॥७५॥ शोधनं नाडी जालस्य चालनं चन्द्रम
 र्थयोः ॥ सानां शोषणं चैव महामुद्राभिधी
 यते ॥७६॥ नाडी जाल के शोधने से रक्त मे रह
 ने वाले वात पित्त कफादि रोगों का हरण हो
 ता है चन्द्र सूर्य के चालन से रक्त के एकत्र होने
 में स्वप्ना अन्तर्पिया गल रक्त का शोषण होता
 है ऐसा महामुद्रा का फल है अर्थात् इस मुद्रा
 का रके नाडी जाल का शोधन चन्द्र सूर्य का चाल
 न सों का शोषण होता है ॥७६॥ ग्रन्थात्तरे
 खेचर मुद्रा विधिः ॥ घट्टन चालन दोहै क
 लां क्रमेण वक्ष्येतावन् ॥ यावत् मध्ये तु

स्य शक्ति तदा खेचरि सिद्धिः ॥११॥ जिह्वा खेच
 रियोग करने की विधि त्रैलोक्य गौरी कहते हैं कि
 देव न चालत दोहन कर्म से जिह्वा वळती है देव
 न जागो कहो चालत यह है कि अंगुष्ठ और तर्जनी
 से जिह्वा को हिलाने देना दोहन दोनों हाथों
 के अंगुष्ठ तर्जनी से जो से गो के थग को डूबे से
 खींच खींच के जिह्वा को लेवी करे जवन कवाह
 निकलत क (मुकुटी को स्पर्श करे तव न क यह
 विधि कर गो है ॥११॥ मुही पत्र निमं शस्त्रे सुगी
 दशां मिग्ध निर्मल मृग समादाय नतनेन
 रोममात्रं समुच्छिनेत् ॥१२॥ देव न कहते हैं कि
 धूर के पत्र के समा त अति तीक्ष्ण सचिके ॥
 निर्मल शस्त्र से जिह्वा को नीचे को रोम मात्र देव न
 कर ॥१२॥ ततः सैन्धव पथ्या भां चूर्णित्वा भां
 मध्वयेत् ॥१३॥ ततः सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं स
 मुच्छिनेत् ॥१४॥ तिस के पीछे सेंधा तमक ओ
 ह (५ का चूर्ण दित म्वा त प (मेल पं नु योगी को
 लवण निषेध है इ स लिये लवण के स्थान रवदि
 (कथ्य) से कार्य करे योग पहे से से सायं प्रा
 तः सात दिन करे फि (पूर्वोक्त विधि से रोममा
 त्र को ट पुनः उक्त औ सधी लाता (है ॥१४॥
 एवं जामे शावणमास नित्यं युक्तः समाचरेत् ॥
 अशासा सा प्रसना मूल शिना वन्धः प्राम्भपाति

॥४॥ रोमे दः महीने पर्यंत नित्यं युक्ति से क
 र तो जिह्वा मूल की ना जी जो जिह्वा को कपाल
 ऊपर में पडू चाने से रो कगी है वह मुख पूर्व क
 कठ जागी है ॥४॥ कतां प ॥ ५ ॥ मुखीं धावा
 विपये परियोजयेत् ॥ सा भवेत् खेचरी मुद्रा
 यो म च अं न ड्यते ॥१५॥ जिह्वा को जिघों क
 (कतां तो ना डियों का मार्ग जो कपाल दि ५
 स में योगित करे यह खेचरी मुद्रा है इसी को
 यो म च अं भी कहते हैं ॥१५॥ (सना मुख्यां
 धावा क्ष ॥१६॥ धी मापि निवृत्ति ना विधे वि मुच्य
 ने योगी व्याधि मृत्यु न ॥ विभिः ॥१७॥ ना तु के
 कप (दित्र में जिह्वा प्रवेश को के एक धडी मार्ग
 खेचरी मुद्रा स्थिर रहे तो योगी को सर्प विन्ध्य
 आदियों का विष न लगे ओ (वुछा पा रोग मं नु
 को गोते वली पतिन (जो वुछा पे में चर्म छीला
 हो कर सल वटे पडगी है) न हो वें ॥१६॥ ऊर्ध्व
 जिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमापानं करोति यः ॥ माता
 र्धन संदेहो मृत्युं जयति योगा विन् ॥१७॥
 ना तु के कप (दित्र के सन्मुख जिह्वा लगाय स्थिर
 करे के भूमध्यगत चंद्रमा से निकल अमृत का
 पान ग योगी करे वह १ पक्ष (१५) दिन में मृत्यु
 को निःसंदेह जीत लेता है यह निश्चय है ॥१७॥
 जिह्वं स्वाम कला पूर्णा शरिरे यस्य योगी न ॥

तत्केलापि दक्ष्या विअंतस्य न लपं गिता
 ओरजिसयोगीकाशिरित्युक्तं चंद्रामृतं
 (के पूर्ण हो जाये तो तक्षक नाग भी इसे से से से
 जो भी विष न लगे : ख न होवेगा ॥ २० ॥ चनाति
 यथा वहि स्मेल वर्गि च दीपकः ॥ तथा सो
 मकला पूर्ण देही दे है न मु अति ॥ २१ ॥
 जैसे अग्नि का छको एवं दीपक तेल सहि
 त वही को नहीं छोड़ता तैसे ही चंद्रामृत
 पूरित देह को जीव का वापि नहीं छोड़ता ॥ २२ ॥
 गोमांस मक्षयनी त्वपि ये दम एवासी म
 ॥ कुलीनं तमहं मये शतैक लघानकाः ॥ २३ ॥
 आचार्य कहते हैं कि जो योगी तिल गोमांस
 मक्षय ॥ एवं अम एवासी पान करे तो उसे
 हम उतम कुल में उत्पन्न समजते हैं अन्य
 था कयोगी कुल नाशक है सत्कुल में उत्प
 न्न इस भी तो उतम का जन्म अर्थ है ॥ २४ ॥
 गोशब्दे तो दिता ॥ जिह्वा तत्पूवे शोहिता गुणि
 गोमांस मक्षय ॥ तत्तु महापातक नाशन म् ॥
 ॥ २५ ॥ इस गोमांस शब्द का अर्थ कहते हैं
 कि गोशब्द यद्यपि जिह्वा का बोधक है जिह्वा
 को कपाल दिव्र में प्रवेश करने को गोमांस
 मक्षय कहते हैं यह महापात को नाश
 करता है ॥ २६ ॥ जिह्वा प्रवेश से भूत वहि गो

त्पादिगः खलु ॥ चन्द्रा त्स्त्रवणियः साः
 सा स्यादम एवासी ॥ २७ ॥ अम एवासी
 का अर्थ यह है कि गालु के ऊपर दिव्र में जिह्वा
 का प्रवेश ॥ २८ ॥ (गोमांस) से भूत वहि के भी तत्वा
 मभाग स्थित चंद्रामृत प्रविर्त होकर जिह्वा में
 प्रविष्ट हो जाये इससे अम एवासी पान कह
 ते हैं ॥ २९ ॥ चम्बरी यदि लम्बिकाग्रमनिशो
 जिह्वा तत्स्थानिनी सक्षारा कटुकाम्लकुण्ठ
 सहस्रो मध्याग्रतुल्या तथा ॥ व्याधीनां ह
 ॥ जरागत करणो शस्त्रागमो ज्ञीरणां तस्य
 स्यादम एवमक्षयुणितां सिद्धा कुना कर्षण
 म् ॥ ३० ॥ जब पूर्वोक्त कसौ से जिह्वा वलाय
 के उक्त विधि से चंद्रामृत पान करे तो लग
 ते हैं तो मुख में लवण सहित भर्त्तिचादि चिं
 चाफल दिव्र मधु धृत के आदि स्याद अ
 पसे शान हो ते हैं तब योगी के रोग तथा स्रधा
 वस्था का नाश होता है शस्त्र (जो अपने को
 काटने लाया) का निवारन होता है आठों
 सिद्धि मिलती है देह भाव मिलता है सिद्धा
 गनाओं के आकर्षण को सामर्थ्य होती है
 ॥ ३१ ॥ मृर्धः को उशपत्रपत्र गालित प्राणा
 दवापुं हठा पूर्वा स्या रसना नेय म्पविव

शक्ति परा चित्रयन् ॥ ३७ ॥ लो लो कला
 च विमल चारामयं यः पिवे ॥ निर्व्याधिः सम
 शालको मलव युगो गी चिह्नी वनि ॥ १४ ॥
 जीह्वा कपालादि क्रमेण गाय मुखवि परि
 तकराणी केतारह कचा कर केडाली नीके ध्या
 न सहिते प्राणा यामसे मुकुटी मध्य दिवल
 कमल के नीचे के स्थिति शब्द ल कमल में
 हृदय योग से प्राप्ता जातिर्मल चारामयानां
 गलहित चंद्रा मृग सहे ॥ ३८ ॥ योगी पानक
 र ५१ को ज्वर विरोग न होने तथा कमल के
 गामे का सा को मल शरीर हो कर वक्रग काल
 पर्थ न जावे ॥ १४ ॥ यत्प्रालेयं प्रहिता सुखि
 रमेत मूर्धा तारस्थं तामितत्ये प्रवपति सुजीता
 मुखं निभगा नाम ॥ चन्द्रात्सा ॥ स्रवणैव पुष्यते न
 मृत्युर्न ॥ १५ ॥ नक्षत्रीया तु करामयोगा यथाका
 य सिद्धिः ॥ १६ ॥ मेतपर्वत लक्ष्म सवसे कृषी मुख
 म्ना के ५ पौर्णमासी स्थित चंद्रा मृग सप्तमला जे समे
 स्थित है ऐसे दिक् मे सत्व गुणा सावृद्धि के ३१ म
 तत्व है ओ गंगा यमुना सरस्वती नर्मदा सेरा के २५
 पिंगला मुखमा गांधारी आदि नाडियों का ३३ के
 वामें मुख है ३१ के धारा चक्र मंडल गत अमृत पथ
 चलने से शरीर न मृत्यु को प्राप्त होता ३३ नि
 य प्रथम कह आय है कि सुकरा नाम मुखे चरि
 मुक्ता के विना देह की सिद्धि लावण्य वल वज्र स
 मा १६४ शरीर ही होते ॥ १५ ॥ सुखि र ॥ १५ ॥

१०० पञ्चस्रोतः समन्वितम् ॥ तिर्य ते रे
 चरि मुक्ता तस्मिन् रूपे निरुक्ता ॥ १६ ॥
 २५१ पिंगलार मुखमा ३१ गांधारी ४४ हस्तिनि
 हा ५१ का प्रवाह कप को हे सो ११ के प्रवाह
 संयुक्त आत्मा को साक्षात् प्रकट रहे ने वा जो
 विवर है सो ३१ विद्या एवं ३१ विद्या के कायें को
 क मोहादि प्रहोने है जिसमे ऐसे विवर मे स्थ
 चरि मुक्ता चस्मे स्थित होती है ॥ १६ ॥ एक म
 स्थि मयं वीज मे कां मुद्रा च रे चरि ॥ एको देवो
 निरालम्ब एका वस्थामनो मनी ॥ १७ ॥ सम
 लो नो मे मुख सृष्टि रम एक प्रमाणा वह हे स
 मल देवताओं में मगा वार मुख है ने से ही स
 मल मुद्राओं में रे चरि मुख है ॥ १७ ॥
 ३५१ नं कहे यस्माद विभ्रांतं महारवगाम् ॥
 ३५१ यानं गदेव स्यात्पुमात्तु के सरी ५० ॥
 जिसका १५ ३५१ यान वं च से रं का प्राणा युक्त
 ही भी विभ्रात न के ३५ के जो सा मुखमा मिंगा नि
 काला है ३५ का रारा वह मृत्यु रपी ३५ के कप
 सिंह जो सा पदी वं च कहता है ॥ १७ ॥ ३५१ यस्मि
 मे मागे ३५ जो ना मे मिंगा धते ॥ ३५१ यानो ह्ययं
 यं सग वं चो निग धते ॥ १७ ॥ ३५१ यान वं च का
 स्या १५ योगी कहते है ३५ से ये यह वं च ३५ स्या
 न में कर १५ योग है ॥ १७ ॥ यन्मा नो रे ३५

भिन्न होगी है कठ स्थान में जो विशुद्ध नामा
 चक्र है वह अंगुष्ठादि ब्रह्मरंध्रांत से ५३ आ
 धारों का मध्यम चक्र है ३१ १६ आधारों का व
 र्णान पूर्व व ३ श्लोक के टीका में कर आये हो ॥ २ ॥
 मूल स्थान समा कृष्ण कृती या ननु कारयेत्
 ॥ २३ ॥ वायु गाना वक्षा वाह्योत्पास्त्रिमे पथि
 ॥ ३ ॥ नाभिको पास्त्रिमतान् रूप कृती या न वेध
 को ॥ ३ ॥ के वन माय जालं धा वं धा से ५३ पिं
 गता नाडियों को संभन करे तदनंतर ए पश्चिम
 मार्ग मधुमामे प्राणा वायु को प्राप्त करे ॥
 ॥ २४ ॥ अनेने व विधानेन प्रयाति पवनो लय
 म्ना ततो तज्जायते मृत्पुर्ज एगादिकं तथा
 ॥ २४ ॥ इस विधि से वायु की गति वंद हो का
 प्राणा वायु स्थिर हो का ब्रह्मरंध्र में स्थित रह
 ता है ॥ २४ ॥ प्राणा लय कहते हैं ॥ २४ ॥ मृत्पुज
 रा रोगा देह की त्रिवर्णी ॥ श्वेत रोगा ना ॥ मूर्धा आ
 लम्बा दिक न ही होने है ॥ २४ ॥ वेध त्रय मिदं
 ओषं महा सिद्धे असे निम्न ॥ सर्वे वां हठं
 त्राणां साधनं योगीने विदुः ॥ ५ ॥ मूल वेध
 व कृती या न वेध २ जालं धा वं धा ३ ये ओषं हे
 मतये प्रादि महा सिद्ध व सिद्धादि मुनि इन्हें
 सेवन करते हैं ॥ हठ के उपाय के सिद्धि को प्रग

त्कर्ते है इससे गोरक्षादि सिद्ध रहे जातगे
 है ॥ ५ ॥ अन्ति विस्त्रवने च प्राद भूतं
 दिव्य रूपि साः ॥ तत्सर्वं ग्रसते सूर्य सेन
 पिण्डो जरा युतः ॥ ६ ॥ ना लुके मूल में स्थित
 दिव्य रूप चंद्रमा से कछु क अमृत स्नान हो
 ता है ॥ ६ ॥ मे स्थित अग्नि रूप सूर्य ग्राम का
 लेता है तव देह को वृद्धावस्था हो गी है ॥ ६ ॥
 तत्रास्ति करुणा दिव्य सूर्य स्य मुख वज्रान्तर
 ॥ गुरु पदेश तो जेयं ननु शरत्त्रार्थ को धिभिः
 ॥ ७ ॥ इस प्रकार से ५३ सूर्य के मुख वं च
 ना अर्थात् जिसे ५३ अमृत सूर्य के मुख में
 तप देय हयुक्ति कहि है तथा विपरीत का र्णा
 मुद्रा भी ॥ जो आगे कहेंगे ॥ इस के उपयोगी है ये
 सर्व गुरु मुख से जाने जाते हैं विना गुरु कोरी से
 रक्षा कदाश्च के अर्थ में भी न जाने जाते हैं ॥ ७ ॥
 पाश्चिमागो न संपीड्य यो निमाकश्चैव कुपम्
 ॥ अपान मूर्ध्व माध्व मूल वेधो विधि यो ॥ ८ ॥
 अपान वायु उपर की च के प्राणा वायु से योजित
 करना पाद की सूरी से गुदा से वं लिंग के मध्य
 योनि स्थान को ६० अचेत के गुद धा को ६० से
 जांचित करना जिससे अपान वायु वाहर निकले
 इस प्रकार मूल वेध होता है ॥ ८ ॥ अपान प्रा
 ण योरे वयान् क्षयो मूल पथि योः ॥ युवाभ

वनिहोऽपि सगते मूलवन्धनात् ॥ १८ ॥
 अपानां प्राणावायुकासे कर्जो निरेत
 रमूलवन्धका अन्नासकः हो है ॥ सके मूलमूत्र
 क्षय होते है और वूछा भी जवात हो जाता है ॥
 ॥ १९ ॥ गोरक्षसंहिता में दशमुद्राओं में से महामु
 द्रा वस्त्रे च ॥ २० ॥ १ ॥ जाले धावे ध ॥ मूलवन्ध
 प कहो है अथ महावेध ॥ महावेध २ विपरि
 तकर ॥ १ ॥ मुद्रा ३ वमोली ४ शक्तिचालन पय
 पांच शरीर शक्तिके में साधारण प्रका ॥ पूर्व ही क
 ह आये है तथापि विशेष प्रकटता के लिये में
 ॥ २१ ॥ ग्रन्थान्तर मत से भी निखता है - ॥ नगप्रथ
 में महावन्ध ॥ पाश्चात्तमस्य पादस्य योगि
 स्थाते गो नयेत् ॥ वामो हपी संस्थाप्य दक्षि
 णां च ॥ २२ ॥ तथा ॥ वा ॥ वामपादकी सुती से जो
 निस्थातको रोध के दक्षिण पाद ॥ ससे कप ॥ स्था
 पन करे अर्थात् मूलवन्ध करके ॥ वा ॥ पूरयित्वा
 तगो वायुं हृदये विवृण्वे ॥ २३ ॥ निष्पीड्य वा
 युमाकम्भमगमये नियोजयेत् ॥ २४ ॥ तवज
 लं धवेध करके वायुको पूरक रमनको मध्य ॥
 ३ ॥ सुभुम्भा ॥ में प्रक्षेप करे ॥ २५ ॥ धारपित्वा यथा
 शक्तिरेचयेदति लेशवैः ॥ सवा ॥ क्रिनु समम्भ
 म्पादस ॥ क्रि पुनरम्भसेत् ॥ २६ ॥ यथा शक्ति कं
 भक करके मेदरे चन करे से ही वामो गमे
 अन्नास करे दोनो अंगों के अन्नास की संख्या

समान करे ॥ २७ ॥ अथानुसर्वनाडीना मूर्ध्व
 गतिनिरोधकः ॥ अथ २ वलु महावन्धो महा
 सिद्धिप्रदायकः ॥ २८ ॥ यह समान नाडीयों की
 कप ॥ को गतिरोधक महा सिद्धिदायक महा
 वेध है ॥ २९ ॥ कालपाश महावन्ध विमोच
 न विचक्षराः ॥ त्रिवेणी संगमं धत्ते केवा ॥
 प्रापयेन्मम ॥ ३० ॥ मनुपाशको काटने का
 जो है ३१ ॥ पिंगला सुभुम्भा ॥ गीता के संगम
 (त्रिवेणी) धारण कर मन को (केवा ॥)
 मुकती शिवस्थान में प्राप्त करे ॥ ३२ ॥ सप्त
 लाव ॥ पसं पत्राय धारिणी पुनर्वविता ॥ महा
 मुद्रा महावन्धो विष्कनो वेध वर्जितः ॥ ३३ ॥
 मे से को ति ॥ ३४ ॥ शोभा युक्त स्त्री पुनर्वविता
 व्यर्थ है ॥ से ही महावेध विना महामुद्राओं ॥
 महावेध निष्कल है ॥ सनिये अव महावेध कह
 ते है ॥ ३५ ॥ अथ महावेधः ॥ महावन्ध स्थि
 तो ये भी धारवा पूरक मे कधी ॥ वायुना गति
 माहोत्सवि हो करु मुद्रया ॥ ३६ ॥ ० ॥ सुकाग्र
 बुद्धि करके योगी महावेध ३ स प्रकार ॥ करके
 नासा पुट से पूरक करके जाले धावे ध के वा
 युकी कर्ध्व ॥ तिका शोक की मक कर ॥ ३७ ॥
 समहम युगो भूभौ सिद्धि चो रंग ॥ ३८ ॥ ये धने ॥

पृथ्वीमतिचमवायुः स्फुरतिमध्यगः॥
॥२॥ दोनहूँ हाथों की हथेली समान पृथ्वी
में धरके पादको सडीको यो निम्नानमें डूबल
गाय हाथों के सहारे पृथ्वी से कुछेक शरीर उठा
वे (परं तु जे से मूल वे धर्म प्रानरवले) फिर मंद
मंद पृथ्वी के अपने शरीर सन सिद्धि के गत।
उन के रस से वायु उठ पिं गता को उल्लेखन
क (सुख म्हा) मिं प्राप्ता होता है रस मुद्रा में स्वा
भुवन में न था हा एतु पदिक म्हा मिं कहता
है कि शरीर पृथ्वी से उठा य कर पृथ्वी में ना
उठकाने से उक्त मुद्रा उठन ही रहल कती यदि
वलसे रक्ता गी तो मूल वंधा विगाड जाता है
रस से मुग्ध मनोप प्राप्त न से यह कार्य सुख
पूर्वक होता है जो भी मुभीता यह है कि हाथों
के गोर से मीर उठाने में मूल वंधा सुरा मता ही
से होता है ॥२॥ सोम सूर्याग्नि संवत् घो जा
यते चामृता वले ॥ मृता वस्था समुत्पत्ता
नतो वायुं निरेचयेत् ॥३॥ रस विधि से सूर्य
चंद्रमा अग्नि आत्मका ६५ पिं गता सुख म्हा
कल योग मोक्ष के हेतु है से से होते में मर ड
आ जे सा मृता वस्था होती है नवना सिका पु
र में मंद रेचन को ॥४॥ महा वेधो यम
आसा महा सिद्धि प्रदायकः ॥ वली पलिते वे

पद्मः सेवने साधको नामे ॥४॥ रस म
हा वेध के अभ्यास करने से आशा आदि
असिद्धि मिलती है वली (गुठ पिं में मुल
परमल वेध पडती) पलित वल म्हे न हो
न) कंप (गुठ पिं में शरीर का पना) ये उक्त
अभ्यास को नहीं होते ॥४॥ सन अर्थ मह
गुहं जगत्पुत्रिनाशनम् ॥ वहिषदिक (चै
वह्यणि मादि गुण प्रदम् ॥ पाये महामद्रा
महा वध महा वेध गोप्य है गुठ पिं तथा म्मुका
दू (क) तो है जाठ रग्नि को वधा तो है असिद्धि दे
ते है ॥ पा असिद्धा क्रिये ते चैव यामि यामि दि
ने दिने ॥ पुष्प संभार संघा यि पापो धमि डं
सदा ॥ सम्पत्ति क्षा वना मे वं स्वल्पं प्रयत्न
साधनम् ॥६॥ आठों प्रहर में वही वार्द्धन का
अभ्यास करे ये पुरुष को वधा तो है पाप समु
ह को वध के समान सुख तो है शिखा वात पुरुष
को रस प्रकार दिन २ प्रहर २ में जो ५२ कर के अ
भ्यास कर योग्य है ॥६॥ अथ विपरीत का
॥ मुद्रा ॥ ऊर्ध्व ना मे धा मालो र्ध्व मा ऊर्ध्व
शशि ॥ करणी विपरीतार व्यागृह वध मे नल
अपने ॥७॥ अथ विपरीत करणी मुद्रा कहते
है कि ऊपर को नाभि नाचने नागु कर के नाभि

६०
 स्थूल रूप को मुकादिस्य चंद्रमातीचे
 को होना गोहे ३ ससे चंद्रा भूत सूर्य सप अग्नि
 में नही पडे पाता यह विपरीत का ॥ ११ ॥ मुद्रा हे
 य हां ग्रंथ का निरुद्धा हरण कदे कति ख कति
 खा गुल रूप पति मरुदो ज दिया ३ सा तीये
 में (भावा का) अपने अंतु म व सु वं हरि गु
 रूप दिक्ष मार्ग सि विरव गोहे कि दो न हुं पै रों से
 प आस न वां ध का दो न हुं हा थ जो र शि (ओ
 (चोरी) को पृथ्वी में लगा य ३ म प आस न
 को क प (अं ती क्ष में र व डा के अ म्मा स ड्ये में
 कमी गो र्द स प आस न को रे वी त पां व आ का श
 में ले वे के क मो फे वे से ही में प आस न को ह
 थ जो र शि रे के स हा ६ ल रा र व डा रे ह न व य ह म
 डा होगी अ म्मा स से मु ग म हो जा गो हे ॥ १ ॥
 नित्य म म्मा स यु म्मा स ज ३ र गि वि वर्दिनी ॥
 आ हा रे व हु ल ल स्य स पा थः सा ध क से च ॥
 ॥ २ ॥ गो र्द स मुद्रा का नित्य अ म्मा स क (गो हे
 ३ स की ज ३ र गि व ३ गो हे ३ स सा थ क के अ
 हा (व हु ग (य थे च्छ) का ना चाहिये ॥ २ ॥
 अल्पा हो ॥ यदि मे व पा गि द ह ति त क्षि रा ॥ न ॥
 अधः शि र श्चो र्ध्व पा दः क्ष ॥ ॥ स्ना त्तु य मे दि ने
 ॥ ३ ॥ ३ स मुद्रा का अ म्मा स ती य दि भो ज न अ ल्प
 का हो ज ३ र गि प्र ज्व लित हो क (दे ह को प
 क गो हे अ व क्रि यो हे कि प हु ले दि त शि र

६१
 पृथ्वी में १ र व क (थे) क प को स ॥ भा ग को
 ॥ ३ ॥ स ॥ ॥ किं वि द क्षि क म म्मा स च दि दि
 क ॥ व लित प लित चे व व रा मा सो र्ध्व न द श प
 ने ॥ या म मा ज नु थो नित्य म म्मा स ल ग का
 व जि नु ॥ ४ ॥ फि (प्र ति दिन एक एक क्षा
 न था य के अ म्मा स से सा धे गो सि धि म य में
 व ली प लित दः म ही ने में दू (हो जा ने हे गो प्र
 ति दिन एक र प्र ह (पर्य त् दू स को का र गो हे
 वह का ल म्मा को जी त गो हे ॥ ४ ॥ अ थ व
 गो ली ॥ स्वे च्छ या वर्त मा ने पि थो गो ते र्ति
 ध गो र्दि ना ॥ व गो लीं थो वि ज ना ति स थो गी
 सि धि मा ज न म्मा ॥ १ ॥ अव व गो ली मुद्रा क ह
 ते हे कि नो थो गी त्म नित्य म न हीं जा त ना ड आ
 भी अ म ती र द्धा से व गो ली को जा ते व ह जा ति मा
 सि धि पा गो हे ॥ १ ॥ न च व लु द यं व क्षे ड ल मं
 य स्य क स्य चित् ॥ क्षी र चे कं दि नी ये तु ना ॥
 च व श वर्ति नी ॥ २ ॥ ३ स मुद्रा में ह ह कि सी को
 दो व लु ड र्ज म हे वि हो य तः य र अ व श प चा हिये
 व गो ल्य र्थ संग मो त (उ ध पा न एवं व श वर्ति नी
 स्त्री ये दो ड प थो गी हे ॥ २ ॥ मे ह ने न शो वे स म्मा
 म्मा र्ध्व क अ न म म्मा से ता ॥ पु र थो प थ वा ना ॥
 व गो लीं सि धि मा पु या त ॥ ३ ॥ संग म क र के

मंदमंदशरितलीयकोईद्विधसंकोच
नकारेकप्रखेवनेकेअभासमिद्धस
मंदमंदनीमद्रोकोसिद्धिप्राप्तहोगीहै॥३॥
यानोःशालनालेनपूज्यकारंनवकन्दर॥शने
शनेःप्रकृतीमवायुसंचारकारणात्॥४॥
इसकीपूर्वागक्रियाकहेहेकिचांदीवाको
चकी१४अंगुलखोरवशिष्टाकासाकेदुक
रजो१२अंगुलमान२अंगुलनिर्दिष्टहै५लोले
॥द्विप्रमंप्रतिदिन२२अंगुलप्रवेशकारुण्य
किनारेसेपूंककरवायुप्रवेशकारुण्य॥६॥
दिनमें२४अंगुलप्रवेशकरैइससे५द्विधभागी
शुद्धहोगीहैतवइसमार्गसेजलकेआकर्षण
काअभासकरैअभासमिद्धसमेंवीर्यका
आकर्षणकोसिद्धिहोगीहैजिसकोखेच
रिसंवत्राणजयसिद्धहैइसकोवग्रीनीसिद्धि
होगीहै॥४॥नामगोपनादिन्दुमभासिनोर्ध्व
माहरेत्॥चतितंचातेजविन्दुमध्यमाक्षरक्ष
येत्॥५॥स्त्रीसंयोगमेंजवविंदु(वीर्य)शरी
सेचलायमातहोतेभीउसेउकाभासलेकप्रका
खीचलेवेअथवाजवअगमेंगिएउतवस्त्रीके
मरग्रीहजविंदुकोआकर्षणकरैकप्रकाचलायक
रुखापनकरै॥५॥सुखसंरक्षयेविन्दुमध्य
जयतियोगवित्॥५॥विन्दुपानेतजीवन

सहजोली कहते हैं — सहजोली श्याम
 रोतिर्वज्रोत्पलामेद एकतः ॥ गले शुभ्रमम्
 निक्षिप्य दधगोमयसंभवम् ॥ ११ ॥ जो चु
 श्रोती के फल वही सहजोली अमरोली के भी
 है ॥ सलिये ये भी इसी के मेद हैं गोव (क
 के डे) गोमदे गलाय के मम गल मे ॥ मेला
 वे ॥ ११ ॥ वज्रोली मे धुना दूर्ध्वा स्त्री पुंसो स्त्रो
 गले पनम् ॥ आमीन को सुरवे ने व मुद्रा
 पायोः क्षरा ॥ १२ ॥ वज्रोली अर्थ मे धुन
 क (के क्ष) मा अमरु से वे ठ के ववायवा
 पा (छोड के ड म म गल में मि वा य स्त्री
 पु म अपन २ सर्वा गले पन करे ॥ १२ ॥
 सहजोति रिय प्रोत्ता श्रद्ध या योगिनिः सदा ॥
 अथ २) मकर योगो गोमय को पि मुक्तदः
 ॥ १३ ॥ यह मगये प्रादि योगी श्वरे ने सहजोली कहि
 हे यह योग मकर कहि है अमरु साधनाओं में ज
 हा मोग नहं मोक्ष नहं जहां मोक्ष नहं मोग नहं क्ष
 मुद्रा के अम्मास में मोग साहित मोक्ष भी है ॥ १३ ॥
 अथ योगः पुरा पवनं धीराणां तत्त्ववर्धिनाम् ॥
 निर्मलस एणां सिद्धये तत्तु मत्स ॥ १४ ॥ नेनाम् ॥
 ॥ १४ ॥ जो योगी पुरा पवन धैर्य वा तत्त्ववर्धी ओ
 निर्मलसि है उनको सिद्ध होत है जो मत्स ॥
 (अथ २) मध्वी है उनको सफल नही होत ॥ १४ ॥
 अव दूसा मेद व अमरोली कहते हैं =
 पित्तो त्वत्वात्प्रथमा मध्वी ॥ विहायानिः

सात्तयात्प्रधारा ॥ निवेद्य गोशीतलाम
 धधारां कापालिके स्वरासमो मरोली ॥ १५ ॥
 शिलायुक्त प्रथम सज्जधा ॥ पित्तोक्त य्वा लोत
 तथा अंजधारा ॥ निःसात्ता से ज्वा ॥ क ॥ निर्विकार
 मध्यधारा को ग्रहण न लेवन कते है यह यो
 गोमिम न कापालिको किया है ॥ स्ने अमरोली
 कहते हैं यथा (कापालिक) कनको गोमियो
 का (जिसे रवंड मग कहते हैं) यह कर्म विशेष
 जग रक्ष है ॥ १५ ॥ अमरिये पिले निज न लं
 अर्ध न दिने दिने ॥ वज्रोली मम्प से स मग म
 रोली निक व्यत ॥ १६ ॥ जो पुन व अमरवा ॥ १६ ॥
 (जो रवे चरी प्रकरा में कही है) कापालिक को
 है एवं नास भी आम वात री काले गे हैं तथा
 प्रजिदि न वज्रोली का अम्मास करे को सो ही
 कापालिको अमरोली कहते हैं ॥ १६ ॥
 अम्मासानिः स्तना चान्द्री विभूत्या सह मिश्रये
 त्वा धारये दुग्धमांगे सुदिव्य दृष्टिः प्रजायते ॥
 ॥ १७ ॥ अमरोली के अम्मास से निः स्तन व प्रमुखा
 का पूर्वोक्त मम्प में मिलाय के ड म अंम म
 के ने ग रंक्ष हृदय अज दिमं धा ॥ कोना म्प
 म विव्य लर्मा न देव ते योग पदिव्य दृष्टि हो जा
 गी है ॥ १७ ॥ अथ स्त्री ॥ वज्रोली ॥ पुंसो विड
 समा कम्प स म्प ग म्मास मा ॥ वात ॥ यदि
 गी ॥ जो रवे वज्रोली सा पि मोगिनी ॥ १८ ॥

अवास्थियों को वगैरी तीसावन कहते हैं कि जो स्त्री
अम्भाल की चतुर्धाई में मुतख के विंदु को स्वीच के
अपने रज को वगैरी तीसावन करे रक्षा करे पदमी
योगिनी कहती है ॥१॥ तस्याः किंचिन्नो नाशं
न गच्छति न संशयः ॥ तस्याः शरीरे नादश्च विंदु
तो मे वा च्छति ॥२॥ इस के जका नाश (पतन)
निसं देह अल्प भी नहीं होता तथा शरीरे में नाद
भी इतना होता है चंद्ररूप विंदु सूर्य रूप रज के
बाहर संयोग से लुखि (गर्म) होता है परमप
द मिलता है इन के संयोग में देते हैं ॥३॥
एन विंदु वगैरी ही के अम्भाल से देह में प्राप्त
होते पर सर्व सिद्धि देते हैं ॥४॥ रक्षे वा कश्च
नादूर्ध्वं मा (जः सा हि योगिनी ॥ अग्नी नाग
गा वे नि रवे च चिचमवे न ध्रुवम् ॥५॥
जो स्त्री अग को आ कुंचन करने करे रज को
कपट शरीर में च छोड़े रक्षा करे वह योगी
नी होती है अतः अविष्य वर्तमान जाते अं
नरीक्ष में ली चरते दाहिने मा निष्क गगि मे
नी है ॥६॥ देह सिद्धि व लभते वगैरी लम्बा
सुयोगतः ॥ अथ पुण्य करो योगो भुक्ते पिमु
क्ति दा ॥७॥ वगैरी ली के अम्भाल योग से देह सि
द्धि रतपला वराप वल वज्र संहन तमावा मिल
ते है यह योग पुण्य देते न लान था विषय योग
योग ने में भी मुक्ति देता है ॥८॥ इन में वरा शास्त्रे

बाल न मुद्रा प्रथम अजपा गायत्री के ५५ अंति
क ह आये है अवश्य वं का माहात्म्य कहते हैं—
शानि मुद्रा वरा प्रोक्ता आदिनाथे न दाम्भुगा ॥
एकैकं तामुयमिनां महा सिद्धि प्रदायिनी
॥९॥ ये वरा (५०) मुद्रा आदिनाथ शिव ने कही
हैं इन में एक एक मुद्रा योगी को आग्नि मादि
देते दाहिने ॥१०॥ ५५ देवा हि मुद्रा ॥ आं यो पते
सां पदा यि कम् ॥ ससु वज्रो गुरु स्वामी सा
क्षा दीप्ति सवसः ॥११॥ तस्य वाक्पपरो भूत्वा
मुद्रा भासे समाहितः ॥ अग्नि मादि गुणैः सार्ध
लभते काले वज्र गम् ॥१२॥ इन के ५५ देव कर्ता
गुरु के आसन कर्म कर आहार विहार चेष्टादि
वाक्यो में आद (पूर्व क प्रहरा क) लप रहे
तो अग्नि मादि सिद्धियों को जीत का काल म
नु की जाते ॥१३॥ अथ प्रशावा म्भालोः ॥
पञ्चासत्तै समाहृत्य समकाया शो रो धा ॥१४॥
साग्र दक्षिरे कोने जपे दो क्ता मवयम् ॥१५॥
अथ प्रशाव के अम्भाल की विधि कहते हो कि स
काज स्थल में बैठ कर ६८ पञ्चास नवां ध के द
शीर कंठ शिर सम (सरल) कर के नासाग्र दक्षि
ने रत्न कर के प्रशा वन प करे ॥१६॥ अथ अर्चन
रि मे लोकाः सोमसूर्याग्नि देवता ॥ यत्पु माता
मुनि क्षिति जलपट्टे ज्योति रो मिति ॥१७॥

निमप्र॥ वकेअका॥ ५का॥ मका॥ तीनवर्ण
 में भूव भुव स्वः ३ ये लोक वक्रमा १ मूर्ध्या २
 अग्नि देवता रहने है वह प्रशावप॥ मका॥ ॥
 मपमोतिर्मयचेतनम॥ अका॥ स्वमप॥ ॥ ॥
 त्रयः का नास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयः स्वराः
 ॥ त्रयो देवाः स्थिता यत्र तत्प॥ ज्योतिरोमिति
 ॥ ८५ ॥ निमप्र॥ वकेअका॥ ५का॥ मका॥ ॥
 ल॥ त्रयः का नास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयः स्वराः
 पाताल ३ लोकः ५ वाताः अ० वातस्वर्ग ३ स्व
 ॥ प्रह्ला॥ विष्णु॥ महेश्व॥ तीन देवता रहने है
 मोप्र॥ वकेअका॥ स्वमप॥ प्रह्ला॥ ज्योतिरोमिति
 स्वमप॥ ॥ ८५ ॥ क्रिया रक्षा तथा शानं प्राप्ती
 शोधी च वैष्णवी॥ त्रिवा शक्तिः स्थिता यत्र तत्प॥
 रज्योतिरोमिति॥ ८६ ॥ निम॥ प्र॥ वकेअ॥ ५का॥
 तीन॥ मात्रा ३ क्रिया रक्षा शानं शक्तिः भेदा
 का॥ प्रह्ला॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 ती है॥ मोप्र॥ वकेअका॥ स्वमप॥ प्रह्ला॥ ज्योति
 है॥ ८६ ॥ अका॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 शक्तः॥ त्रिधा॥ मात्रा स्थिता यत्र तत्प॥ ज्योति
 रोमिति॥ ८७ ॥ त्रिलोकात्मा अका॥ ५का॥
 ओ॥ वि० स्व० म० म० म० म० म० म० म० म० म० म०
 निममे॥ स॥ प्रह्ला॥ ज्योतिस्वमप॥ प्रह्ला॥ ज्योति
 निमहुं माचार रहती है जिसमे ऐसा प्रह्ला॥ ज्यो

नि स्वतप प्रशाव है ॥ ८८ ॥ वचसा तज्जोपे
 वीजं वपुष्मान् तमममलेतु॥ मनसा तत्तम
 रान्ति तपे तत्प॥ ज्योतिरोमिति॥ ८८
 १ स प्रशावको सकल जगत्कारण भाव
 नाका॥ के० व० तसे जप कराना॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 सगादिसे सा॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 वार्थ॥ समज्ज अमास का॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 ॥ प्रह्ला॥ स्वतप प्रकाश चेतन समज्ज के सर्वदा
 ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 यो ज्योति प्रशाव सदा॥ न सति जाति पाप तप जप
 गमिवा मसा॥ ८९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 च युक्त वा वाह्य शोच मात्र धाजे से ते से हो का
 प्रशाव का अर्थ समज्ज अमास से जप कराना है उस
 को शारी॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 जल में रहती है परंतु जल उसके पत्र को स्पर्श नहीं
 कर सकती ऐसे ही ५ त्रिविध का प्र॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 भी मिले पर रहती है ॥ ८९ ॥ अथ प्राशा॥ याम प्रकाश
 चलने वा ते चलने विदुर्निश्चल निश्चली भवेत्ता॥ यो
 गी स्था॥ युक्त मा प्रोति जने वा युंति स च येन ॥ ९०
 प्राशा वायु के निश्चालोद्धा सहने रहने में विड
 भो चलायमान होना है जो प्राशा वायु स्थिर होगा
 तो विड स्थिर हो जाना है ॥ ९० ॥ याम से प्राशा वा
 यु स्थिर हो गया तो योगी चिरकाल योगाभास

समर्थ होना है दीर्घजीवी न था ईश (शिव)
 भावको प्राप्त होना हो है क्षमति ये योगी को वा
 युनिरोध कराना मुख्य है ॥ ईश ॥ यावदायुःस्थि
 तो देहे तावज्जीवं न मुञ्चति ॥ मर्यादास्थानि
 व्याप्ति सतो वायुनिरोधयेत् ॥ ईश ॥ जवलो ईश
 ॥ ईश ॥ वायुस्थिर रहना है नवलो जीव शरीर को नहीं
 छोड़ता जव प्राण वायु शरीर से निकल जागा है गो
 सी अवस्था को मरणा कहते हैं जीवन मरणा प्रा
 ण वायु के आधीन है क्षमति ये प्राण वायु का ए
 व न अवश्य विधि से चलाया चाहिये ॥ ईश ॥ याव
 द्बोमहदेहे यावच्चित्तं निरामयम् ॥ यावदादिर्भु
 वोर्मध्यं तावत्कालमयं कर्तुं ॥ ईश ॥ जव न कर्त्तुं प्रा
 ण वायु के म कले देह में स्थिर रहना जव न के ये न
 विषय वासना तथा गति का ॥ ईश ॥ कर्त्तुं का निर्वि
 का है और जव न कर्त्तुं मध्य में दृष्टि निश्चल है तव
 न कर्त्तुं काल की मय नहीं होगी है ॥ ईश ॥ अतः काल
 मया कृत्वा प्राणा याम परायणम् ॥ योगिनी मुन
 यश्चैव न तो वायुनिरोधयेत् ॥ ईश ॥ नैसकारा
 जीवन मरणा प्राण वायु के आधीन है ईश ॥ पुत्र हार
 सन का दिसिद्ध कता त्रेयादि मुक्ति प्राणा याम के सा
 धन में तत्पर है अन्य योगियों को भी इस अभास से
 काल की मय नहीं होती इस हेतु प्राणा याम साध
 न का योग है ॥ ईश ॥ अत्रिंशदंगुलो हंसः प्र
 याणां प्राणो वहिः ॥ वामे दक्षिण मार्गः ॥ ततः प्रा

णो मिधीयगे ॥ ईश ॥ शुद्धि मेति यदा सर्व
 नाडी चक्रं मजा कलम् ॥ तदेव नाथ योगी
 प्राणा संग्रहणे क्षमः ॥ ५ ॥ नवशरीरं मनसि
 व्यासनां शोचत नाडी शोधन प्राणा याम के प्रभा
 व से शोध के शुद्ध निर्मल होना है नवशरीर प्रा
 ण योगी प्राणा वायु को व्याप्त को सामर्थ्य
 योगी को होना है अथ ध्यान ही ॥ ५ ॥ अथ
 नाडी शोधन प्राणा याम विधिः ॥ नवपञ्चा
 सतो योगी प्राणा चन्द्रेण प्ररयेत् ॥ धारयि
 त्वा यथा शक्ति श्रूयः सूर्यं हारे चयेत् ॥ ईश ॥
 नाडी शोधन काले चाले प्राणा याम की विधि
 कहते हैं कि एक काल में स्थूल ओष्ठ को मत आस
 न में बैठ कर पञ्चास नों ध्यान वचन नाडी
 (३५) से १२ से व्याप्राण जव करो मन्द मन्द
 पूरक तथा वह संख्या से दोन हूँ ओष्ठ याम के
 क्रमक्रमें चन्द्रमण्डल का च्यान का ॥ १ ॥ ओष्ठ ॥ १०
 संख्या से सूर्य नाडी (पिंगला) से मन्द मन्द
 चान के (यह चन्द्राग (वामांग) प्राणा याम
 है ॥ ईश ॥ अथ नवधिसंकाशंगोक्षी धवनो
 पमम् ॥ च्यावाचनमसो विम्वं प्राणा याम मुक्ती
 भवेत् ॥ ईश ॥ चन्द्रांग प्राणा याम में दाहि ३० धम
 मान अति शुक्ल वर्ण अमृत स्वतप चन्द्रमा का कंठ
 नथाना भिमें च्यान क (नेसे आनन्द का अंगुमव हो का
 मुख मिलता है ॥ ईश ॥ दक्षिण शोभा समाप्त यूपुरे

उचरंशतेः॥७॥मधित्वाविधानेनपुनश्चन्द्रे॥
 रेचयेत्॥६॥सूर्यागि (पिंगा लामार्ग) से
 प्राणावायु १२ संख्यासेप्राणवजप सहितपूरकके
 १६ संख्यासेकुंभकमेंआदित्यमंडतका ध्यात
 क (नाडी) १०० संख्यासेप्राणवजपकरकेचंद्र
 नाडी (२५ मार्ग) सेमंदरेचनकरनाथहृद
 क्षिणांग (सूर्यांग) प्राणायामहे॥६॥प्रज्यत
 ज्वलनंज्वालापुञ्जमादित्यमण्डलम्॥ध्यात्वा
 गामिस्थितंयोगीप्राणायामोसुखीभवेत्॥६॥
 सूर्यांगप्राणायाममेंकुंभकविधयेजाज्वल्यमा
 न अग्निज्वाला समुदायलमात आग्निमयसूर्य
 मंडलकोअपनेनाभिकमलमें ध्यातक (पिंगा
 योगीप्राणायामकोजोआनेदपाताहे॥६॥
 प्राणांशेदिद्व्यापिचोत्पारिमितंमूयोत्पारेच
 येत्॥पीत्वापिक्कलयासमीरुणमथोक्कालजे
 धमया॥सूर्याचन्द्रमसोरनेनविधिनाविम्यद्यं
 ध्यायतां॥मुधानाडिमणामवत्तियमिनामास
 त्रयापूर्वार्तः॥१००॥५७४४४०॥ककाअर्थसूक्ष्म
 सपुनःकहतेहेकि यदिप्राणावायुकोवामनासा
 पुनरे १२ प्राणवजपसेपूरक १६ जपसेचंद्रमंडल
 ध्यातसाहितकुंभकओ १०० जपसेरेचनसूर्यांग
 डीसे १२ मधित्वाकरनाथहृदकप्राणायाम
 हुआपुनः ५ क्षिणांगीसे १२ जपपूरक १६ सेसू
 र्यमंडलध्यातसाहितकुंभकओ १०० सेरेचनका



कारनादूसरा प्राणायामहुआ पुनः वामने
 पूरक वक्षिणसे रेचन करके नीला प्राणायाम
 महुआ इसी प्रकार (चंद्रो ग पूरक के कम के मेयं
 द्विविध प्राण वायु स्वल्प का और सूर्यो ग पूरक के
 कम में सूर्य विं व अपान वायु स्वल्प का ध्यान का
 नवाले योग के समाप्त गरी काल लीन महीने
 उपरान्त सिद्ध (निर्मल) होते है यद्वा गरी शोधन
 का इंताम प्रकार कहो है जो संयम से रहके योगि
 न नेति र तो ली र व सी ४ चार कम मत्ता हु पू
 र्म में पीर काम न को तो मोहन ही प्राणायामों
 के अभ्यास से इतका इतक फल संपादित हो
 जागा है जो ले कहो है कि प्राणायाम से सर्व प्र
 शुध्यंति मता इति आचार्यो गानु के अविद
 मत्कर्म न संमत म ॥ ॥ अर्थात् प्राणायाम ही
 से ता प्रमत्त शुद्ध हो जागा है इस लिये यद्वा वत्स्या
 दियो के अलघौ पादि अकर्म संमत नही है ॥
 ॥ १००॥ ग्रन्था ग ॥ प्रातर्मध्यं दिनं सायमर्ध रात्रे
 च वृत्तमकार ॥ इति रशीति पर्यंतं चतुर्वारं सम
 भ्यसेत् ॥ वा अत्रो वयले सूर्यो वय पर्यंतं र
 धी प्रातः काल दिन के पाच विभाग का मध्य
 भाग मध्याह्न सूर्यास्त मरु खरी जाग पीछे सा
 यं संध्या काल और अर्ध रात्रि मे २ मुहुर्त निशी
 थ काल होता है इन चारों में प्रत्येक में ८० प्रा
 णायाम करना अर्ध रात्रि में न कर सके तो रा

कालमे अवश्य अभास का नाचा स मय के
 ३२० ओ [६२ मय के ३४० प्रा ॥ ॥ याम हो गे है
 ॥ ११ ॥ क नीय सि भवेत् स्वेदः कम्पो भवति म
 धमे ॥ ५३ ॥ मे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निव
 लयेत् ॥ २१ ॥ जिवसे प्रस्वेद आवे वह क निष्पति
 स मे कं प हो वह म धम मे है जिस में वायु प्रक्षेप
 प्र मे प्राप्नो हो सो इत म कहना है ६२ से योगी
 निरंता वायु का अभास को ओ [क द क म ४२
 विप न कुं भ कर है सो क निष्पत्त से म धम १२५
 मे इत म प्रा ॥ ॥ याम काल कहते है जेव प्रा ॥
 याम स्थिर हो जाय न व प्रा ॥ ॥ वक्षस्व को प्राप्नो हो
 ता है त क्ष २५ विप ल स्थिर रह न व प्रत्पा हा २५
 पता पर्यन्तर है तो धा ॥ ॥ त था ६ धी रह तो ध्या
 न ओ र वा रह दि न रह तो स मा धि हो गो है ॥ २॥
 ज ले न म म ज ले न गा ज म द न मा च रे ॥ ६८
 गाल धु ना चैव ते न गा ज ल्प जाये ॥ ३॥ प्रा ॥ ॥
 याम म म ले जो प स्ता ना आवे ५ ले सर्वा म में रू व
 म ले ३ स से गा ज व धु ओ [६८ हो ने है अर्थात्
 ज ५ ना का अभाव होना है ॥ ३॥ अभास काल
 प्रथमेश लं क्षी ए ज्म भोजन म् ॥ न तो म्भा से
 ६ धी भू जे न ना ६३ नियम म् ॥ ४॥ अभास
 काल मे दूध धृत भोजन को जेव के व न कुं भ का
 म्भा से ६८ हो जाय न व ५३ नियम का क द ३॥

ग्रह न हो ॥ ४॥ यदा गुणा दी श्रुतिः स्यात्
 था चि हानि वा क्षतः ॥ काय स्य क्ष ३॥ का
 ति सदा ना पे नानि जिन म् ॥ ५॥ ज व ना दी
 श्रुति हो गा नी है तो वा ६ चि ह दे ह की क्ष ३
 ता को निर्वर्ध न आदि निश्चय दे व ने मे आगे है
 व हु न काल स म क म क धा ॥ ६॥ क ते से ३
 ४१ गि प्रदीप्ति ना व की प्र क ८ तो ओ [नि रो गि
 ना हो ती है ये सर्व ना दी श्रुति के ३ ॥ ॥ ॥
 यथेष्टं धा ॥ ॥ वायो र न ल स्य प्र दी प न म् ॥
 ना व दिव्या कि ॥ ॥ रो मं जा य ते ना डि शो ध ने ॥
 ॥ १०५ ॥ इति गो र क्ष शास्त्रे प्रथम शतक म् ॥ ॥
 ना दी सो ध न हु य मे अ पेत स म रे यो य मं ज ज म्
 काल पर्यन्त प्रा ॥ ॥ वायु के धा ॥ ॥ साम ध्य हो ती
 है ५५ गि प्र दी प म्भा स्त न ना व का म्भा ॥ ॥ ओ
 [नै र ५ प ना हो ती है ॥ १०५ ॥ इति म ही च ध्या ना यो
 गो र क्ष योग शास्त्र भाषा या संग्रहा या ॥ योगा
 जे पूर्वा म्भा स विधिः ॥ १॥ ॥ द्वितीय श
 तक म् ॥ जो पूर्व १०० श्लोक के १० कामें लि
 खा गया है कि धो नि आदि ६ कर्म का कार्य प्रा
 ॥ ॥ याम से हो ना ना है ३ ह न करे प (३) कि सी
 २ आचा यों का म्भा म्भा भ त है कि =
 मे दः हो म्भा धिकः पूर्व व ६ कर्मा णि स मा चो र्गा
 अल म्भु ना चो ना नि दो धा ॥ ॥ स म भा व न ॥

पूरक का मकर मेव का के प्राणा याम तीन प्रकार का
 होता है बाह्य के वायु को अभ्यंत प्रवेश का प्राण
 वायु को भीतर ही रोक्ना को मकर रक्ष वायु को बाह्य
 निकाला रेचक होता है प्राण वायु का स्मृति का नेव
 ला प्राणा याम है प्राणा को प्राण वायु का क्षय वे
 शको स का क्षम जप का अधिक है पूरक में
 अकार का स्मृति पूर्वक १२ प्राण ध्यान सहित १६
 प्राण जप से कुंभक ३० मकर के ध्यान पूर्वक १०
 जप से रेचक का गाय ह सक प्राणा याम होता है प्राणा
 मात्रा द्वाव दश संयुक्त दिवा काल ११ कौटिल्य
 लम पञ्चमो प्राण यौ योगिभिः सदा ॥ ३॥ प्राणा
 याम के अभ्यास काले यदि संयम पूरा न पड़े
 ये तो नाडी मलिन होना गी है इस लिये पुनः नाडी
 शोधन प्राणा याम कहते हैं कि चंद्रांग सूर्यांग
 प्राणा याम प्राणा पान वायु संयुक्त १२ प्राण
 मात्रा का के पूरक चंद्रांग सूर्यांग मंडल ध्या
 न युक्त १६ मात्रा का के कुंभक ३० मात्रा से
 रेचक का के चंद्रांग सूर्यांग नाडी मल को नाश कर
 है ऐसा योगियों में जानता ॥ ३॥ पूरक द्वाव दश
 कर्मात् कुंभक को १६ कौटिल्य रेचक के १६ उं
 का ॥ प्राणा याम संचयेत् ॥ ४॥ प्रथमे द्वा
 दशी मात्रा मध्यमे द्वि १॥ मात्रा ५० मे त्रि
 १॥ मात्रा ५० प्राणा याम स्थगि शय ॥ ५॥
 पूरक में १२ कुंभक में १६ रेचक में १० मात्रा प्राण
 की यह प्राणा याम प्रकार कति है इससे विज्ञा

अर्थात् पू० २४ कुं० ३२ रे० २० यह मध्यम
 मो ॥ पू० ३६ कुं० ४६ रे० ३० यह उच्च प्राणा
 याम है ॥ ४॥ प्राण ध्याने चोद्योग धर्मः कर्मो
 भवति मध्यमे ॥ ५॥ कति कृत्युतमे योगी ततो
 वायुं गिरो धयेत् ॥ ६॥ कति कृत्य प्राणा याम में
 प्रस्वेद (पत्नीत) होता है मध्यम में कंप होता है
 ५० म में योगिका आधा ५० ना है इस लिये प्राणा याम
 मकर अभ्यास का गाय ह होता है ॥ ६॥ कक्षपञ्चमो
 योगी तम रक्षतु गुरुं शिवम् ॥ मुमक्षु दक्षिरेका
 का को प्राणा याम समभ्यसेत् ॥ ७॥ कर्ष्यमाणीय
 न शक्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८॥ प्राणा याम कि
 विधि कहते हैं कि सुकांत स्थल में मोटे वलवाला
 को कमल के वलादि आसन में पञ्चासन बांध के
 बैठ कर श्रीगुरु एवं शिव को प्राणाम कर अभ्यंत
 स्तविन हो रह ऐसे चंद्रांग वायु का ध्यान मुमक्षु का
 के दोन हूँ दक्षि मुमक्षु में स्थापन करे तब न प्राणा
 प्राण वायु का क्षय वेद्य ओम् ध्याने स का क्षर
 मंज का पूर्वार्त मात्रा के प्रकार से पूरक को मकर रेच
 क प्राणा याम चंद्रांग सूर्यांग प्रकार के निरु
 का ॥ रे मूला चार संकोचन पूर्वक अभ्यास वायु
 का क्षप पूर्वांच के प्राणा वायु से संकोच करे तब अभ्या
 न वायु मिश्रित प्राणा वायु को शक्ति वाला मंडल ५
 ना ॥ के ५ तिनी को सुखम् ॥ मार्ग से क्षप को चक्राये
 ३० ना विधिक से योगी तम जप पापां से निर्मुक्त है

अपने ही पालक को मार डालते हैं नैसे ही
 बचन भी युक्त अभास से व शक्ति होना है
 अयुक्त अभास से रोगादि कों का अभा
 सो को अनित्य हो जाता है ॥ २० ॥ युक्त युक्त
 जेदा युक्त युक्त च पूरये ॥ युक्त युक्त च
 व धीयदिवे सिद्धि रदुःखः ॥ २१ ॥ वायु शरीरः
 शरीरः रेचन का ॥ १ ॥ जै से नासादि के काम ने
 ईका जो शरीर का है आनन्द से ही शरीरः श
 रीरः पूरक भी करता युक्त युक्त पूरक करता
 जिस से चित्त को आशा सो करना होवे थोड़ा
 से काम सहन योग्य बन जावे ॥ २२ ॥ अथ ग्रन्था
 तोर प्राणायाम मे ॥ १ ॥ प्राणायामादि ध्या
 ना तोर रेचन पूरक कर्म के ॥ सहित केवल से
 निःश्वस को विविधो मतः ॥ १ ॥ ग्रन्थां तोर
 प्राणायाम के मेद कहते हैं के प्राण (शरीर)
 त गार्त वायु के रोध को प्राणायाम कहते हैं
 इस के रेचन पूरक कर्म कहते हैं मेद है भीत
 र से वायु वाहर हो ॥ २ ॥ रेचन वाहर से वायु
 की गति पूरा करता पूरक और पूरित वायु को
 धतवत् धारणा करना कर्म कहना है
 कुंभ के भी केवल एवं सहित को मेद है केवल
 योगियों के संमत है और सहित भी दो प्र
 का का है एक रेचन पूर्वक दूसरा कुंभक

पूर्वक पहिले रेचन प्राणायाम से दूस
 रा पूरक प्राणायाम से मित नही है इन के प्रे
 मे व प्राणायाम प्रकार से जानने ॥ १ ॥
 या व केवल सिद्धिः आत्मसहिता व कर्म
 से ॥ रेचन के पूरक कर्म का सुख व धायु धार
 ॥ २ ॥ १ ॥ गवतों केवल कुंभक की सिद्धि हो
 त व तों सहित कुंभक मूर्ध्यांग प्राणायाम से का
 के सुख ॥ ३ ॥ के मेद के नीचे ५ स के भीतर धर
 का सा शब्द हो त केवल कुंभक सिद्धि होता
 है त व तों ॥ १ ॥ १० व धाय के धर्म्यत करे साम
 र्य हो तो अधिक करे रेचन तथा पूरक को भी दो
 ५ के वायु धारणा करे ॥ ३ ॥ केवल कुंभक कहते
 हैं ॥ ३ ॥ प्राणायामोऽयमि युक्तः लवे केवल
 कर्मकः ॥ कर्म के केवल सिद्धे रेचन पूरक वर्गि
 ने ॥ ३ ॥ प्राणायाम जो कहें ३ युक्तों केवल कुंभ
 कहें ॥ अथ प्रकार ॥ १ ॥ शोधनार्थ है रेचन कर्म
 कहि ॥ केवल कुंभक के सिद्धि हो जाते हैं ॥ ३ ॥
 तत्त्व कुंभक में किंचिच्छ्रु लोके सुविद्यो ॥ शक्तः
 केवल कर्म न यथेष्टं वायु धारणा ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४ ॥
 गी को तीन हुं तो कर्म कर्म कुंभक नहीं है त व के
 वल कुंभक के सामर्थ्य होने से यथेष्ट (आत
 र्य) वायु धारणा करे ॥ ४ ॥ राजयोग पदवा
 पि लभते ॥ १ ॥ संशयः ॥ कर्म का कुंभ

पूर्वक पहिले चक्र प्राणायाम से दूसरा
 पूर्वक प्राणायाम से **मिन्न** रहि है इनके पूरे
 भेद प्राणायाम प्रकार से जानने ॥१॥
 लीलोधः अंडली बोध तो भवेत् ॥१॥ ईश्वर
 विधि से निस्संदेह राजयोग पद प्राप्त होता है
 अंग के अंग ससे आधा शक्ति (अंडलिनी)
 बोध होता है इससे निष्काल स्यादि मिदने
 है ॥१॥ अंगाला सुख ॥ यह सिद्धि
 नायेत ॥ हठ विना राजयोगे राजयोग विना हठः
 ॥ न सिद्धति न तोय ममानि व्यजे सम भवे
 त् ॥ ६॥ ओ (सुख ॥) के कलादि मल दूर हो
 है नवहठ सिद्धि (मोक्ष) होता है हठ योग विना
 राजयोग सिद्धि राजयोग विना हठ योग सिद्धि ही
 होती इस नियम से न हूँ का अंगाल का ॥ ६॥
 कर्म क प्राण रोधाते कर्मा चिन्ता निराश
 यम् ॥ एवमभास योगे न राजयोग पद व
 जेत ॥ १॥ अंग कसे प्राण संरोध के अंग में
 चित को आश्रय रहित कर इस प्रकार के अ
 भास योगे के राजयोग पद को प्राप्त होता
 है ॥ १॥ वपुः कश शर्व वदने प्रसन्नता नाद
 स्फुटत्वं नयते मुनिर्मलना आरोग्यता विदु
 जयोऽग्नि दीपते नाडी विशुद्धि हठ योग ल
 क्षणात् ॥ ८॥ हठ योग सिद्धि जप होता है
 तो देह में कश ता मुख में प्रसन्नता नाद की

प्रगटना मेवों की निर्मलता नीलो गिता धा
 तुका जय उदर में नठरा गिकी सद्धि नाडि
 यों की शुद्धि ये लक्षण होते हैं ॥ १॥ चरणों
 सुरादीनां विषये सुयथाक्रमम् ॥ यन्मया
 हरणं नेत्रां प्रत्याहार मंड्यत ॥ २॥ अव
 प्रत्याहार कहते हैं रूप रस गंध स्पर्श शब्द
 ये पांच विषय हैं इनमें चक्षु जिह्वा घ्राण त्वक्
 कर्णा ॥ इन पांच जगें प्रियों के कर्म होते हैं अ
 र्थात् उक्त जगें प्रियों के उक्त विषय क्रम से हैं
 आसन प्राणायाम सिद्धि के जिस ईश्वर प्रिय
 का जो विषय है उससे दूसरे के समीप भावना का
 क्रमशः शनैः शनैः लागू करना अर्थात् श्रद्धा से
 उसके विषय का अंग अव के रके ~~प्र~~ श्रद्धा प्रियों को वि
 शय से अलग ॥ १॥ प्रत्याहार कहते हैं ॥ २॥
 यथा रगीय काल स्थोर कि प्रत्याहार प्रभा मु
 रगीया कु स्थित योगी विकास मान संतथा ॥ ३॥
 दिन के प्रातः मध्य ॥ सायं योगी न भाग से गीत
 काल होता है जो से (गामे) सायं काल में सूर्य
 अपती (प्रभा) कातिको क्रमशः हरण कहते हैं
 ऐसे ही योगी भी गामे (अंग) आसन व प्राण
 याम प्रत्याहार (३) प्रत्याहार में मान ल वि
 कार (विषय) में मन के अभिनिवेश को हरण
 करना अर्थात् विषय संवद से चित को नृपता
 ॥ ३॥ अङ्ग मध्ये यथाङ्गानि कूर्मः संकोचयेद्

पुनः॥ योगी प्रत्याहरे देवमिन्द्रिया॥ गितथा
 नमि॥ २४॥ जैसे कुर्म (कलुषा) अथने हिा
 पै आदि अंगों को सकोच न कर अथने हीमी
 न आदि पाय देना है अंगों को सही में रहने है पातु
 नहुए के रूप होना है ऐसे ही योगी ने भी इं
 द्रियों को विषयों से विमुख कर आत्मा में इनकी
 हातियों को आ मनेन अर्थात् इंद्रियों को इनके वि
 ययों में आसक्त न होने देना विषयों से तृप्त जेसा
 मानक इंद्रियों को अभनेगीन अंग रागामे
 आसक्त कर ॥ २४॥ यं यश्च योगि कर्माभां
 मप्रियप्रियमेव वा॥ तं न मात्मे निविशाय प्र
 त्याहरति योगवित् ॥ २५॥ अगत्समथवा
 गत्संयं यं निधुनि नासिका॥ तं न मात्मे नि
 विशाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २६॥ अमेधम
 थवा मेधं यं यं पश्यति चक्षुषा॥ तं न मात्मे
 निविशाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २७॥ अल्यु
 दमसथवा ल्युदं यं यं श्रुति चर्म ॥ २८॥ तं न
 मात्मे निविशाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ २९॥ ली
 वरपमलावपं वा यं यं रसति निहृया॥ तं न मा
 त्मे निविशाय प्रत्याहरति योगवित् ॥ ३०॥ क
 र्मासे मधु र्वाकठो रजै से शब्दों को सुनता है ये
 से मन भी कार्वा शब्द में आसक्त हो गा है यो
 गी जने इन शब्दों को भी अहमी आत्मा ही है स
 मन वह मन में निश्चय कर मन को इन शब्द विष
 य से प्रत्याहरा करे अर्थात् शब्द को विषय मान

के जो मन में ससंभ्रम शब्द सुनने का प्रमहोता
 है उस प्रममन को ससे मिथ्या (विनाशी) जानकर
 मन को उस से हटावे जैसे ॥ ३१॥ रस्सी में लपे
 का एवं चारा गुहा धन प्रभादि को में मनुष्य भू
 तादि प्राणि होती है ते से ही अरु वंश नंद स्वरूप
 आत्मचेतन में संसा यधा देह है वह एक वृ
 द्धि प्राणि का के कल्पना करती है वस्तुतः ३१
 मनत्वा निरिक्त कथमी न हो है इस का एसा सं
 पूर्ण ज्ञान आत्म स्वरूप है ऐसे ही शब्दादि उ
 त्त विषयों को भी आत्मा ही है भावना पूर्वक निश्च
 य कर के वाहरानी अर्थात् नंद स्वरूप आत्मा से
 अथ कोई ती ही है सो धार ॥ ३२॥ स्थिर कर के शब्दा
 दि विषयों को चलाय मान हुस में भी उन्हें माने
 विषय न माने नासिका से सुगंध वा द्रुधि जो
 सूंघता है उसे आत्मा ही है निश्चय कर के नासि
 का की श्रुति गंध धार म न को नुमाय प्रम में शल
 ता है उसे हटावे जैसे इंद्रिय से जो नो पवित्र वा अपवित्र
 पदार्थ देखता है उसे भी आत्मा ही है निश्चय कर के
 विषय से मिथ्या प्रम को उकेने जैसे इंद्रिय प्राणि को उके
 विषय से हटावे त्वगिंद्रिय से मृदु वा कठोर तप्त
 वा शीत आदि जिस्म र पदार्थ को स्पर्श का जो है उसे
 भी आत्मा ही है भावना निश्चय कर के जिंद्रिय म
 नि जो स्पर्श सुख में मन को नुमाती है उसे हटावे
 जिह्वा से सलोना अलोना मिष्ठ कटु आदि जिवर
 रसों को चलाता है उसे आत्मा ही समझ कर जि
 ह्वा की हाति को हटावे इस प्रकार योगी प्रत्याह

रके अभास करके मंथे प्रिय हजियों को अपने
विषय में सिद्ध हो जाना है तो योगी जानों से सुने मधु
रहाव के गुल्य मानता है कोई भी शत के वित्त को अपनी
ओल ही लेना यत्न करे से ही तेरी से देवता की पि
शाच मधुच्छ. पुना बाला वाचा शत गोवा ॥ ५६ ॥
रत्नादि सभी को गुल्य देवता है नासिका से कस
री आदि सुगंधा वा नल को स्त्री स्त्री कचवा पी
कादि डाँधि यों से गुल्य सुख मानता है त्वचा से
आग्नि वा जल को स्त्री स्त्री कचवा धपा ॥ (आ)
को धा ॥ आदि को के मार से गुल्य सुख मानता
है ओ (जिह्वा से भी वा कडुवा न पचाशीतगी
का (मिर्च) वा दूध मिर्च रे न गोव (वा कल) वा
सूती आदि को को गुल्य स्या विद्वमानता है ॥ ५७ ॥
२६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ चक्रा मृग मरों धा ॥ प्रत्याहर
ति मात्क ॥ ५८ ॥ प्रत्याहरांतर स्या प्रत्याहर स
स्यते ॥ ५९ ॥ प्रत्याहरा को विधि कहते उपान के
वल हठ योग ही से भी प्रत्याहरा की विधि कहते हैं
कि जो शत क मल करि का स्थित चक्र विंद से
जो अमृत धारा गिरती है उसे नाभि कमल स्थित सूर्य
ज आस कर लेता है तो ५९ धा ॥ को विपरीत क
रिणी मुद्रा करके सूर्य से दाय अपने मुख में पा
इसे प्रत्याहरा कहते हैं ॥ ६० ॥ एका स्त्री मुग्धे
धा म्या मागा चक्र मरुला तु मृगी यो य पु
नता मा म न वेदना मला ६१ ॥ एका स्त्री पद से

के र स्था नागा चक्र मासे निक सी अमृत धारा
का बोधन है ॥ (दाया) पद से सूर्य चक्र मा का बोध
है ॥ ६२ ॥ तीय पद से आप (योगी) है ५७ अमृत धारा के
६ संवना मिगत चक्र सूर्य से नो ॥ ६३ ॥ को
नास ॥ (आप) स्वयं विपरीत करणी मुद्रा का के ५८
चक्र सूर्य से व काय कर ओ ॥ के नो अमृत म हो ता है
॥ ६४ ॥ नाभि देशे वर सत्ये को मास्करो व दनात्मने
॥ अमृतान्मास्थितो नित्यं तालु मूले च चक्र मा ॥ ६५ ॥
अग्नि मय एक सूर्य नाभि में निवास करता है अमृत
म क चक्र मा वि शुद्ध चक्र में रहता है ॥ ६६ ॥ वर्चस्य
यो मुख श्वन्द्रो म सत्पुर्ण मुखो विता शान व्या
करा नित्रय धापी पूव मा व्यते ॥ ६७ ॥ विशुद्ध
चक्र में रह कर अधो मुख चक्र मा अमृत धारा ववा
ता है ५९ धा ॥ को नाभि स्थित कूर्ध्व मुख सूर्य पी
ले ता है योगी करके ५९ सूर्य को वंचन कर ५९
अमृत धा ॥ को अपने मुख में प्राप्ता किया जाता है
इसे विपरीत करणी मानता ॥ ६८ ॥ कूर्ध्व नाभि
धरा गुह्य मा गुरधः शरी ॥ का एति विपरीत
रत्ना गुह्य वा के न न भते ॥ ६९ ॥ नो नाभि गा
सूर्य को उपर (ना गु) वि शुद्धा न चक्र मा का
नीचे करे यह विपरीत करणी उत्त मुख हो से
जाती जाती है ॥ ७० ॥ निरवने से नहीं किंतु
मुखो ध यों गी यो को दन ना ओ भी र म ए
कराते हैं कि यह म प्रा ॥ ७१ ॥ याम योग सर्व
विपरीत मुद्रा साधन के उपान ६२ ही से सुगम
हो जाती है ॥ ७२ ॥ निचा वधो स यो यत्र रो

रवीतिमहास्वनः॥ अनाहनेचनअ
 कंदययेयोगीनोविदः॥ ३५॥ नीनफेर
 ॥ तिथोसेवधासवभजेसेपाधीनहो
 क। शब्दकारताहैरेसेहीअनाहनेच
 क्रमेसत्त्वगतमोगुरास्वाहमभाया
 विषेप्रतिविंविनहोरहाजीवपएपक्षमे
 तिमध्यमाविषेप्रविंविंनहोरहाजीवप
 रापक्षपांतिमध्यामाकेक्रमसेहृदयमध्य
 मेंनादसहितहोकारनिरंतशब्दकारता
 हैअनाहनेचक्रकोहृदयमेंयोगीगत
 जानतेहै॥ ३५॥ अनाहनेप्रतिकम्प
 वाचमभमरि। पूरकम्प॥ प्राप्तेप्राप्ते
 महापक्षयोगीस्वमभृतायते॥ ३६॥
 रेवेचोमिप्रकारकेअमृतपानकोरू
 चितकरनेहैकिप्राप्तापानवायुको
 एकत्वकारमरि। पूरकमानाहनेच
 त्रकोउल्लेखनकरकेमहापक्ष (प्र
 हस्थान) कोप्राप्तकारकेयोगीका
 अमृतमयशरीरउत्तामृतपानसे
 होजाताहै॥ ३६॥ कर्ध्वमोदयपञ्च
 पक्षगतितंप्रायादवाप्तहृदयपूर्वा
 म्भोरसनांनिधायविषिविचक्षिंय।
 चितयेत्॥ नत्कल्लोलकलाजलै

५
 सुविमलंजिह्वाकृतंयःपिवेन्निदोषःसम्
 ॥ लकोमलवपुयेगीचिरंजीवति॥ ३७॥
 उत्तमका। केवहस्थानपथेतप्राप्तावायु
 कोपूरार्कयोगीशिरमेंरहनेसहस्रदलक
 मलसेविशुद्धचक्रमेंगिरतीवेताप्राप्तावायु
 कोउप। चवायनासिकाकर्ध्वविवरमेंप्राप्त
 करेकर्ध्वविवरमेंजिह्वाप्रवेशकारनामुखमी
 कुपाकोकारकेसहस्रदलकमलमेंप्राप्तावायुम
 हितप्राप्तहैकंडलिनीकाध्यानकरनाउंड
 लिनीकासहस्रदलमेंप्रवेशहोनेहीनोअमृ
 ताका। गैरगनिकनताहैउसकालेशभूतअति
 निर्मलजिह्वाकेमध्यतलेनिकलेहुयअमृतको
 पानकरेवहयोगीअतिसुकुमा। शरीरायके
 समस्तरोगदुःखोसेरहितहोकरवृद्धाकात
 पर्यंतजीवितरहाताहै॥ ३७॥ समानानुभूते
 नकाकचंचुवदास्मेतशीतलंसालेनापिवेत्
 ॥ प्राप्तापानविधानेतयोगीभवतिनिर्जरा॥ ३८॥
 अपानवायुकोउठायअपानवायुकेसाथसेक
 नेवालेप्रकारसेकाक (कोने) कासाचोचमुखका
 शीतलसालेल (वाहवायु) कोजोयोगीपूरक
 (पूरार्क) काताहैवहदोहावस्थासिरहितहोताहैअ
 र्थात्सर्वदायुवाहीरहताहै॥ ३८॥ समानानु
 भूतेनयप्राप्तामनिलंपिवेत्॥ अवर्धनभवेताम
 सर्वरोगसंशयः॥ ३९॥ जिह्वाकेसहायक(केगा)
 मूलसेजोविवर (विषु) है। उसककिजोयोगीप्रा

॥ वायुको पूरार्ण (पूरित) करता है इसके
 धः महीने के अन्त में समस्त रोगों का नाश
 होता है ॥ ४६ ॥ विशुद्ध मन्त्र मे चक्र ध्याना से
 सकलामृतम् ॥ ५५ ॥ गार्गा ॥ हृन्तं या निवर्जयि
 त्वा मुखं रेः ॥ ४७ ॥ पांचवां विशुद्ध चक्र (जो
 कंठ में रहता है) में चंद्रकला मृतक ध्यान करने
 के मन्त्र को हराकर गार्गा सूर्य के मुख को
 वंचन कर (योगी के मुख में) चंद्रकला मृतक
 ता है इस प्रकार निष्ठा ॥ ५५ ॥ (में प्राप्त होकर) यो
 गी के ज्ञान से रोगों को हल होता है ॥ ४८ ॥ विश
 देव नमो हंसो मे मत्पुं शुद्धि रयते ॥ अतः क
 रौ वि शुकु चरत्तं चक्रं चक्र विदो विदुः ॥ ४९ ॥ विश
 द हंस का ओं शुद्धि रयति निर्मल का बोध कर है
 कर १६ में अत्यंत निर्मल विशुद्ध नामा चक्र है यह
 सर्वोत्कृष्ट है चक्रों के तत्त्व जानने वाले योगी
 जानते हैं ॥ ४९ ॥ अमृतं कंदे रक्षया नासा गोमु
 खि रेजमात् ॥ स्वयं मुञ्चालिने या निवर्जयि त्वा
 मुखं रेः ॥ ४९ ॥ विशुद्ध चक्र स्वचंद्रकला मृतक
 मन्त्र वायु सहित प्रो ॥ वायुको मन्त्र (चक्र) के
 लोविका कर्ण विवर्ण प्रवेश (पूरण) करके मन्त्र
 सिद्धा के मन्त्र (विवा में) पड़ जाते हैं ॥ मन्त्र के
 मुख (जो अमृत को मन्त्र करता है) को वंचन
 (धवन) करके ५५ मृत ५५ (में) अन्न के समान
 पड़ जाते हैं ॥ ४९ ॥ वक्षसो म कला जलं मुविमले
 करौ स्थला दूर्ध्वतो नासा मे मुखि रे नये च ॥ ५० ॥
 न का ऐतत् सर्वं ॥ ५० ॥ स्था म्भुजि साने पत्त

नितरामुत्तानपादः पिवे देवं यः कृत्तने जिनेन्द्रि
 यगो गोते वासि नमस्तुभ्यः ॥ ४९ ॥ कर १६ के मन्त्र
 निर्मल चंद्रकला मृतक पूर्वोक्त विधि से रोक के
 नासा कर्ण विवर्ण प्रवेश करके नव सर्व धारों को रोक
 के (गार्गा) आराचक में प्रा ॥ ५१ ॥ पा १ वायु
 सहित पूरणा करके कर्ण मुख होकर मन्त्र में
 ५५ मृतक एवे रोक को भी करके न का के जिने
 द्रिय होकर ५५ मृतक मन्त्र पान का (गार्गा)
 योगी निरंतर इस विधि को करता है इसका
 क्षय (मृत्यु) नहीं होगी ॥ ४९ ॥ कर्ण निष्ठा
 स्थिरीकृत्य सोमपानं करोति यः ॥ मासा र्धे न नम
 न्देहो मृत्युं जयति योग विदुः ॥ ४९ ॥ निष्ठा को
 मन्त्र (लोवी) के मन्त्र स्थिर करके जो योगी
 अमृत पान करता है इस अन्त में सोम को रुक ही
 पक्ष (१५ दिन) में मृत्यु जीने का सामर्थ्य हो
 ता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४९ ॥ गर्दभ मूला विनो
 येन गो न विद्यो विदारितः ॥ अजराम (मा प्रो नित्य
 था पञ्चमुखो हरः ॥ ४९ ॥ जल योगी ने (मूलवंध)
 मूलधार रोक करके नमरा पादि विधु काना शक
 र विधा इस हेतु जामरा पादि देह में आत्मभाव को
 धोकर जामरा पहिना शुद्ध आत्मभाव को प्रा
 प्त होता है जैसे पंचवक्त्र सदा शिव देहा है का (ज
 रामरा) दिरहित विरजमान है ऐसे ही ५५ मन्त्र
 भी होना है ॥ ४९ ॥ संपी ड्य रस गोत्रे ॥ राज
 पत्नी विदुः महर् ॥ ध्यात्वा मृगमयी देवीं यत्नमा
 सेत का विर्मवेत् ॥ ४९ ॥ जो निष्ठा ग्रन्थ राग वंत के

(रंघ्र) को अचेतन (पीडन) का अमृत मयी व। गोश्व
 शिव की कृपा का अभास कर गौहो अभास सिद्धि
 होने पर धर्म ही ने मे विचित्र कावे ना सामर्थ्य कावे हो
 जाना हो ॥ ४६ ॥ सर्वा धारा विवध गित दूर्ध्व धारि
 तं महत् ॥ न मुच्यते मृतं कोऽपि समन्थाः पञ्चधा
 ॥ ४७ ॥ नेहा ग्रसे पीडन कर राज वं त के दिक्
 को हो कने से समस्त नाडियों के मर व सक जाने है क
 प के त कने से अमृत धा ॥ गिरि के अमृत जल ही गिरि म
 क नी पंच धा ॥ ४८ ॥ के अभासी योगी को भी जो सी
 शो मे चंद्र मासे निरस्त गिरि अमृत का है ॥ ४९ ॥
 हार क हो है तो ले ही अमृत को लो वि का के कर्षा वे
 व मे धा ॥ ५० ॥ क नाय है धा ॥ ५१ ॥ हो गी है ॥ ५२ ॥ च
 म्बरी यदि लायिका ग्राम निशो जिह्वार सत्पान्दनी स
 धा ॥ ५३ ॥ का कु का कुल कु ध स धर्म म धवा जल गुल्फं तथा ॥
 व्याधि ना हर रां गरा न कर रां शास्त्रा कु मो नी रां
 त सत्पत्न्या व म र व म क्क गिरि सिद्धा कु ना क र्ष ॥ ५४ ॥
 ॥ ५५ ॥ जिह्व व को लो वि का के गिरि न चं व ना भा
 स कर ने वा ले योगी को कभी ल व ॥ ५६ ॥ कभी च र्वा
 कभी र व ध कभी दू ध स कभी स ह न का ला कभी
 धी का सा स्वाद जिह्व मि अमृत व हो ने है ये ल धा ॥ ५७ ॥
 व अभास सिद्धि इस में हो ने ल गौ है न व योगी के व्या
 धि (रोग) नाश हो ने है स धा व स्वा का निवा ॥ ५८ ॥ हो
 ना है शास्त्र के व्याख्यान करने का सामर्थ्य विना
 पठे भी हो ना है अमृत मय धा ॥ ५९ ॥ अक्ष सिद्धि
 मिल गी है स्मर रा मा ज से सिद्ध गंधर्व नागा दिक
 भा ॥ ६० ॥ के आ क र्ष रा कर ने का सामर्थ्य हो गौ है ॥ ६१ ॥

अथनापूरादेहस्य योगिगोविन्दवत्सपुत्रा ॥ ३४ ॥
 प्रवर्तते रजोऽप्यग्निमादिगुणोपय ॥ ३५ ॥ ३४ प्रप्रा
 हाकाफलकहेजे हे कि कम्पका से ३४ मने पा नि
 र्जाव देह योगिका हो जगो हे नो रा ३४ वर्य प्रप्रा मने
 वीर्य (रेन) कम्पको च उजागो हे कर्ध्वरेना हो का क
 दा चित्तभी वीर्य स्रव निगन ही हो ना एवं अग्निमा
 दिमिद्धि कय हो नो हे ॥ ३५ ॥ ३५ स्वना वि यथा व
 ह्नि र्जो लवर्तिन दीपकः ॥ तथा सोमकला पूरा
 देह देही नमुच्यति ॥ ३६ ॥ ३६ सो अग्नि शुक्लका
 क्त्वं एवं दीपकते लवर्तिको समग्र मरुमनिये वि
 ना न हीं घोडता ने से हो जीवीमा भी चंद्रकता मृग
 से पूरा ॥ ३७ ॥ ३७ योगी केश ॥ ३७ को कवा पित हीं घोडता
 ॥ ३८ ॥ ३८ निरूप सोमकला पूरा ॥ ३८ रे यस्थ योगिनः
 ॥ ३९ ॥ ३९ निरूप ॥ ३९ निरूप सोमकला मृग से पूरा
 इता हे ३ से नक्षकता ग भी ३ से (कोट) नो भी ३
 मे वि धन हीं फे जता ॥ ४० ॥ ४० निप्रप्रा हा (प्रकला)
 अव ३ को से धा ॥ ४१ ॥ ४१ का विस्मा (कहे न हे =
 आसने न समा युक्तः प्रा ॥ ४२ ॥ ४२ या मन सये ना ॥ ४३ ॥
 हो ॥ ४४ ॥ ४४ संपत्तो धा ॥ ४५ ॥ ४५ सम मने त ॥ ४६ ॥ ४६
 सन का साधन प्रा ॥ ४७ ॥ ४७ याम का साधन प्रा ॥ ४८ ॥
 का अमासा स्थि (का केश द्विय हा गियों को रो के
 के सामर्थ्य हृद मे धा ॥ ४९ ॥ ४९ का अमासन का ॥ ५० ॥
 हृदये पश्य भूतानां धा ॥ ५१ ॥ ५१ च पृथक् पृथक् ॥ ५२ ॥
 न सो निश्चल त्वे न धा ॥ ५३ ॥ ५३ सा मिधीयते ॥ ५४ ॥
 हृदये म न एवं प्रा ॥ ५५ ॥ ५५ वायु को निश्चल का (के
 पृथ्वी जल तेज वायु आकाश संशय प्रय

भूतों को धृक् पृथक् सधा करवा धारणा कहती है
 ॥५३॥ या पृथ्वी ही गोल है मनु विरापिना लका एवितो
 संयुक्ता कमला सते न हि च नुष्को राग हृदि स्थायिनी ॥
 प्रा ॥ ॥ तत्र विलोय पञ्च धातुं चित्ता चित्तान्ध ॥ ये
 देवा लंभ करि सदा क्षिप्रि जयं कथं भूवो धा ॥ ॥ ५४ ॥
 पहिले पृथ्वी धारणा कहते हैं कि जो पृथ्वी हरि गोल
 यथा मुवा ॥ समान रमाणीय वर्ण आदि क्षा नृदेव
 ता प्रह्लास हित च नुष्को रा ॥ का ए म धम में (ले)
 बीज युक्त है रस (ले) पृथ्वी तत्व को हृदय में ध्यात
 कर के मावना कर ॥ ५५ ॥ मूल में आप भी लीन
 होता चित सहित प्राणा को लीन कर के पांच (प) ध
 र्म पर्यंत लंभ कर लेवाली धा ॥ ॥ ५६ ॥ हो गी है रस धा
 रणा के सर्वदा अभ्यास करने से पृथ्वी तत्व अपने ही
 शवर्ण हो गी है ॥ ५४ ॥ अर्धेन्द्र प्रणिमं च कल्प धव
 लं करो म्भु गत्वं स्थितं यत्पी प्रखलका ॥ बीज सहि
 तं युक्तं सदा विष्णुता ॥ प्रा ॥ ॥ तत्र विलोय पञ्च ध
 र्मा चित्ता चित्तान्ध ॥ ये देवा कः सहका नृदेव
 ही स्था धा रणी धा ॥ ॥ ५५ ॥ वा तृणी (जल)
 धा ॥ ॥ कहते हैं कि अर्धेन्द्र का (कल्प युक्त समा
 न अंग वरा मृग रूप (ले) बीज मध्य सहित अधि
 क्षा नृदेवता विष्णु सहित जल तत्व को विशुद्ध पत्र
 में ध्यात कर ॥ ५६ ॥ जल तत्व में आप भी लीन हो
 र चित सहित प्राणा को लीन कर पांच धर्म पर्यंत स्थिर
 पर्यंत धा ॥ ॥ ५७ ॥ क ॥ ॥ यह जल लंभ कर लेवाली
 वा तृणी धा ॥ ॥ ५८ ॥ है रस के सर्वदा अभ्यास करने
 से जल कूर विलका भी मल हो जा गी है विष्
 का अस (शरीर में नहीं) होता ॥ ५५ ॥ यता लु

स्थित मिन्द्र गोपल दशंत त्वं त्रिकोणा न वं ने जो एक
 युगं प्रवाल तचिरं स्रे ॥ समस्त नम्रा प्रा ॥ ॥ तत्र
 विलोय पञ्च धातुं चित्ता चित्तान्ध ॥ ये देवा वहिज
 यं सदा विनतुते वैश्वा न हि धा ॥ ॥ ५६ ॥ आ गेयी
 धा ॥ ॥ कहते हैं कि ईश्वर गोप (बीज वृद्धी को ड) के
 सह शरत्क व ॥ त्रिकोणा का प्रवाल (मृगा) समा
 न रमाणीय ने गो रूप (ले) बीज मध्य शो मित अ
 धि रस नृदेवता सहित आ गे य गत्वं को न लु
 स्थान में मावना कर के ५७ ॥ अग्नि तत्व में आप भी
 लीन हो कर चित सहित प्राणा को लीन कर पांच धर्म
 पर्यंत लंभ हो गी है वैश्वा न हि धा ॥ ॥ ५८ ॥ हो गी
 है रस के सर्वदा सेवन करने से बीज अग्नि को
 जीत लेवाली होती है आ गे ५८ ॥ ५९ ॥ का ॥
 ॥ ५६ ॥ य क्षिप्ता अतपुष्ता सति ममिदं स्मृगं मुवा
 र ॥ ॥ तत्वं वायु मयं यका सहितं तत्रैव देवता
 ॥ प्रा ॥ ॥ तत्र विलोय पञ्च धातुं चित्ता चित्तान्ध ॥ ये
 देवा रवे गमनं करो ॥ नैयामिनः स्मा धाय वी धा ॥ ॥
 ॥ ५७ ॥ वाय वी धा ॥ ॥ कहते हैं कि तर्जुला का एक
 ज्वाल के पुंज समान आ गे नी ल वर्ण (यं) बीज सहि
 त अधि क्षा नृदेवता ईश्वर सहित वायु तत्व को म
 धम में ध्यात कर ॥ ५८ ॥ वायु तत्व में आप भी लीन होया
 चित सहित प्राणा को लीन कर पांच धर्म पर्यंत स्थिर
 रस वायु ह वायु तत्व की धा ॥ ॥ ५९ ॥ है रस धा ॥ ॥ के
 नित्य अभ्यास करने से आकाश में गति होती है ॥
 ॥ ५७ ॥ आकार संसु विरुद्ध वारि सह शं य क्षा ॥
 स्थितं तन्मा देन सदा शिवेन सहितं तत्वं हकारा नि

तस्मात्प्राप्तं तत्र वितीयपञ्चदशिकां चैतादितं ध्या-
 ये देवामोक्षकपाठमाह नमः प्रोक्तानमो धारणा ॥
 ॥ पठ ॥ नमो धारणा ॥ कहते हैं कि वर्तुलाका निर्म-
 लजलसमानवर्ण (हं) बीज सहित अधिस्त-
 देवता सदाशिव सहित आकाशगर्भको ब्रह्मरंध्र
 मे ध्यात कर्ता सत्त्वमेव आपसी लीन हो चित्त
 सहित प्राप्ता ॥ कोली न कह पांच धरी पर्यन्त स्थि-
 र रव गाय ह नमो धारणा मोक्ष रपी धा के बो-
 लने में चण्ड है ६ म के नित्य अन्नामक ने से मो-
 क्ष धा ॥ खुल जा गो है ॥ पठ ॥ म मिनी द्रा वि-
 णी चैव वाहनी प्रामिणी तथा ॥ शोबिणी च भव-
 त्मेवाभूता गी पंच धारणा ॥ पठ ॥ पृथ्वी धा ॥
 के अन्नास दृष्ट दुह में जल पवना दिसं मन सामर्थ्य
 होती है वाहनी धा ॥ के अन्नास दृष्ट दुह में स-
 मस्त प्रवृत्त को द्रव (जल) समान काले की सा-
 मर्थ्य होती है एवं आग्नेयी से विना अग्नि ही जल
 मात्र को जलाने की सामर्थ्य होती है वायु धा ॥
 से वायु मात्र किंवा समस्त जगत् को घुमाने की
 सामर्थ्य होती है नमो धारणा ॥ से सर्व शोभा
 सामर्थ्य होती है ये पंच धा ॥ ओं की सा धा-
 रा क्रिया में है ॥ पठ ॥ कर्म ॥ मनसा वाचा धा-
 रणा ॥ पञ्च कुल भा ॥ विशाख सतती योगी सर्व
 दुःख प्रमुच्यते ॥ ६० ॥ कर्म (अनुष्ठान) से म-
 न के चित्त न से वचन सास्त्र के प्रभा ॥ मान

तसे नित्य पाठ कर्माचों धारणा ओं के स्थिरा आ-
 सक (नो है वह स म ल डः खो से भुक्त हो गो है ग द्वा
 शनि धारणा ॥ ॥ स्मृते व सर्व चित्ता धातुरे कः प्र-
 पद्यते ॥ यच्चिते निर्मल चित्ता न विद्या न प्रवक्ष-
 न ॥ ६१ ॥ स्मृ यह धातु चित्ता सामान्य वाच कहै-
 सो चित्त में योग शास्त्रोक्त प्रकार से निर्मलान्त क-
 र के आत्म तत्त्व का स्मृ ॥ कर्ता ध्यात कहा गो है
 ॥ ६१ ॥ विविध भव निध्याने सकल निष्कलं न-
 थ ॥ सकलं चर्या मे देन निष्कलं निर्गुणं भवेत्
 ॥ ६२ ॥ स्मृ यह धातु चित्ता सामान्य वाच कहै-
 सो चित्त में योग शास्त्रोक्त प्रकार से निर्मलान्त क-
 र के आत्म तत्त्व का स्मृ ॥ कर्ता ध्यात कहा
 गो है ॥ ६२ ॥ अतः योगो वहिश्च धुरधः स्थाप्य
 मुखासनः ॥ का ॥ ६३ ॥ निष्ठा समा युक्त ध्यात्वा मुच्ये-
 त किं विपात् ॥ ६३ ॥ सत्तां न पवित्र स्थान
 में ध्यासन वास्वस्तिकासन वां च शरीर
 सरल च गाय आधारा दिचक्रों में अंगः धार-
 णा (मन) लगाय नाश ॥ ग्रह द्वा द्वे कर निश्च-
 य सत्तां हो कर कुंडलिनी सहित ध्येय व-
 मुका ध्यात कर्ता स से योगी समस्त पापों
 से निर्मुक्त हो गो है यह ध्यात मुक्त हो ॥ ६३ ॥
 आधा ॥ प्रथमं चक्रं चर्या भिं च चतुर्दश
 ॥ का ॥ ६४ ॥ निष्ठा समा युक्त ध्यात्वा मुच्ये त कि-
 ल्पि से ॥ ६४ ॥ योगि जनों के ध्यात कर्ता

योगवतस्यानहे शनमेप्रथममूलका। चक्र
मुवावाचिचतुर्दलकमलेहे ३ सकेकारिका
मेस्वयंभूतिगकेहारेमेंविवाकासोडगी
नसमवेष्टितहो। हीकंडालेनीसहिगईसच
ककेध्यानकरनेसेसमलमापे। सेनिर्मुक्तहो
गहो॥ ६४॥ स्वाधिस्यानेचअपुत्रेसभाणि
कसमप्रमे॥ नालाग्रदक्षिरात्मानंध्यात्वा
योगीमुखीभवेत्॥ ६५॥ विनायस्वाधिस्या
नमक्रत्तवार्तिचदलकमलकारिकांमिं
सग॥ वातिर्गुणज्योतिःस्वल्पआत्माकोना
साग्रदक्षिककेध्यानकरनेसेयोगीजानेदा
वस्थाकोप्राप्तहोताहै॥ ६५॥

नर॥ ॥ दित्तसंकाशोचक्रेचभाणिपूरके॥ नाल
साग्रदक्षिरात्मानंध्यात्वासंक्षीभयेजगत्॥
॥ ६६॥ तृतीयभाणिपूरकचक्रद्वयहोतेसूर्य
मंडलसमानरत्नवार्तिकमलकारिकांमिं सग
रावातिर्गुणज्योतीस्वल्पआत्माकोनासाग्रद
क्षिककेध्यानकरनेसेयोगीसमलजगत्को
भकरनेकीसामर्थ्यपानाहो॥ ६७॥ ह्वाकोश
स्थितंशम्भुप्रवाहद्वितेजसम्॥ नालाग्रदक्षि
माधायध्यात्वाब्रह्ममयोभवेत्॥ ६८॥ चतु
र्थहृदयहृत्तआकाशअनाहतचक्रकारिका
कामे। हतेप्रचंडनेनवात्सूर्यसमानतेज

स्तीवा। निग (शिव) काध्यानतासाग्रदक्षि
देकरक। नेसेयोगीब्रह्ममयहोताहै॥ ६९॥
विद्युत्प्रमेवहृत्तमेप्राणायामविभेदतः॥
नासाग्रदक्षिरात्मानंध्यात्वाब्रह्ममयोभवेत्
॥ ६९॥ ऐसेहीविद्युत् (विजुति) समानप्रभायु
क्तहृदयकमलकारिकांमिं उक्तप्रकारसेनासा
ग्रदक्षिदेकरसगुणवातिर्गुणज्योतीःस्वल्प
आत्माकेध्यानकरनेसेयोगीब्रह्ममय (जी
वन्युक्त) होताहै॥ ६९॥ सततंध्यात्काम
ध्वेविशुद्धेदीपकप्रमे॥ नालाग्रदक्षिरात्मा
नंध्यात्वाब्रह्ममयोभवेत्॥ ६९॥ केरस्था
नमेदीपज्योतिसमानकोतिमानविशुद्धचक्र
मेंनासाग्रदक्षिककेसगुणवातिर्गुणज्योतिः
स्वल्पआत्माकेध्यानकरनेसेयोगीअसह
(मरणाहित) होताहै॥ ६९॥ भुवो। तर्गतं
देवंसभाणिकुशिरवोपमम्॥ नालाग्रदक्षि
रात्मानंध्यात्वाब्रह्ममयोभवेत्॥ ७०॥ भूमधो
भाशचक्रमेभाणिकुशिरवा (चूनीकीसूक्ष्मव
भक्त) समानरत्नवार्तिआत्माकोनासाग्रदक्षि
देकरध्यानकरनेसेयोगीसमलदुःखरहित
आनंदमयहोताहै॥ ७०॥ ध्यायन्तीननिभानि
त्वंभूमधोपमेष्वात्मा॥ आत्मानंविजिग्रा
णोयोगीयोगमवाप्नुयात्॥ ७१॥ आशाच
क्रमेणीनवार्तिशिवप्रात्माकाध्यानप्रा
णायामप्रकारक। केकरनेसेयोगीजीवा

माप (माता के ये कप को पाता है ॥७१॥
 निर्गुण च शिव शांत गगने विम्ब तो मुख मू ॥१॥
 साग्रदृष्टि रेका को ध्यात्वा प्रह्लाद यो भवेत् ॥७२॥
 आशा च जमें निर्गु ॥१॥ रूप शांत विम्ब व्यायक
 शिव के नासा ॥१॥ दृष्टि देकर ध्यान करने से जीव
 भाव को देने वाले ॥१॥ धर्म से रहित हो तो है अ
 धार्मिक जीव भाव का स्मरण मांज भी न होना
 ॥७२॥ आकाशे यत्र शब्दः स्थानदाशचक्रमु
 च्यते ॥ तत्रात्मानं शिवं ध्यात्वा योगी मुक्तिं म
 वाप्नुयात् ॥७३॥ जिस तत्व में नाद प्रकट होता
 है. ऐसा आकाश तत्व स्थान मन का स्थान है
 सोही मूमध्य में आशा चक्र कहलाता है इसमें रह
 ते सदा शिव रूप आत्मा के ध्यान करने से यो
 गी कैवल्य मुक्ति पाता है ॥७३॥ निर्मलं गग
 नाकारं मणीचिजलसन्निभम् ॥ आत्मानं सर्व
 गंध्यात्वा योगी मुक्तिं मवाप्नुयात् ॥७४॥
 आशा चक्र ५ पद रूप स्थान में करने योग्य
 ध्यान कहते हैं कि स्वतः को आच्छादित कर
 ने वाला मणि तम संवेद्य से रहित आकाश समा
 न रूप का काट सर्व व्यापक प्रकाशमान तो ज
 स्वतः के ध्यान करने से योगी मुक्ति को प्रा
 प्त होता है ॥७४॥ गुद में दूँ चना मिश्र ह
 र्ममं चतुर्ध्वजा धारि काल भिका
 स्थान मुमध्यो चतुर्ध्वजो विलम्ब ॥७५॥

ध्यान युक्त मन (६) स्थानों को पुनः स्मरण
 नै हे कि गुदा (मूलाधार) १ मं (स्वाधिष्ठान)
 २ नाभि (मणिपूर) ३ हृत्पद्म (अनाहत) ४ त्रु
 र्ध्व (विशुद्ध) ५ धारिका का मूल इति विष्णु का
 स्थान ७ आशा चक्र ८ शक के ५ पद का रूप
 स्थान ९ जेन पद्यान योग्य स्थान है ॥७५॥ क
 थितानि नवैतानि ध्यान स्थानानि योगिभिः ॥
 ५५॥ धेनवमुत्तमनिर्वाणं त्र्यम्बकं ॥ गोदधम् ॥
 ७६॥ योगियों ने ५ तदनव (६) स्थान ध्यानाप
 योगि कहते हैं २ नै ५ पाधि अर्थात् पृथ्वी जल ते
 ज. वायु. आकाश. पांच तत्वों का के सहित क
 रते से आग्निमादि अष्टमिद्वियों का ५ वय होता
 है ॥७६॥ सुषुप्रह्लात्तमं तेजः शिवमोति
 रकनमम् ॥ ध्यात्वा शांता विमुक्तः स्मादि
 ति गोरक्षमाधितम् ॥७७॥ ५ तदनव (६)
 स्थान ध्यानाप योगी कहते हैं २ नै ५ पाधि अर्थात्
 पृथ्वी जल तेज वायु. आकाश. पांच तत्वों का
 के सहित क रते से आग्निमादि अष्टमिद्वियों का
 ५ वय होता है ॥७७॥ ५ तदनव (६) स्थानों में
 सर्वोत्कृष्ट शिव अनाहत आशा चक्रों में ५ त
 प्रकाश से साकाश ॥७८॥ स्वतः को अथवा नि
 र्वाका निर्गुण प्रह्लाद को भावना का के ५ तन्स्था
 नों में ध्यान करने से योगी संसा हो मुक्त हो क
 र पुनर्जन्म मरण रूप संताप में दूरे रहता है यह
 श्री गोरक्षनाथ प्रतिज्ञा का के कहते हैं २ लमें

संशयनमानना ॥ ७७ ॥ तामो संयमविनोप
 ॥ ११ ॥ निमघोरो धयत्सं प्रयत्नादा ॥ ७८ ॥ पातमू
 लं हुन व हसदं तत्तु वत्सूक्ष्म तप ॥ ७९ ॥ न ध धा हस
 रो जे ग ५ ३ ५ ५ ॥ के ता ल के प्र हस र ध्रे मि त्वा गे य ॥
 १० ॥ गि हस मं प्र वि श ति ग ग ने य ज दे वो म ह शः ॥ ११ ॥
 चि त्ता (अंतः क ॥ ११ ॥) को मा णि पू र्च क में स्थि र
 क र के अ पा त द्वा र को व डे प्र यत्न से सं को च वि
 का श क र अ पा त वा यु से र क क र मू र्च के स म
 न मू र्क्ष म अ गि स मा न दे वी म मा न ज्यो तिः स्व ह
 प को क र से क्प वि ष यो चिंत न क र से क र म्पो
 गि ता मि च क को वे च न क र हृ दय क म ल मे प
 हुं च ता गे हे पु नः अ म्पा स मि छि हो गो हृ दय क म
 ल को वे च क प्र हस र ध्रे में प हुं च ता गे हे र ली वि धि
 से यो गिं यो के श ॥ १२ ॥ त्पा ग स म थ में व ही ज्यो तिः
 र म्प त प प्र हस र ध्रे को मे द न क र प म शि व रू प का
 र चि दा का श में प्र वे श क प प्र हस र में ली न हो ना
 गा हे ॥ १३ ॥ तामो कु म्पा र वि न्द न ड प रि वि म ल
 म रा ड लं च रा ड (मेः स म ॥ १४ ॥) क त पं जि म्ब व न ड
 न गं ध र्म वा जी न ॥ १५ ॥ तामि न्म धो जि मा गे
 जि मा गे जि न य त नु च ॥ १६ ॥ दि न्त म लो प्र श मां गं
 वं दे श न त पं म ॥ १७ ॥ म य ह ॥ यो गि नी ज्ञान मु द्रा म्
 ॥ १८ ॥ म णि पू र्च क मे रू र्क्ष व र्ण क म ल चिंत
 न पू र्व क ड स के म ध्य में निर्म ल मूर्ध मे र ड व का
 ध्या न क र ना ह स मं ड ल के म ध्य में स र्व ॥ १९ ॥
 म त्रि ग ग म्पा ड पा धि मे द ले नी न प्र का (को प्र

प्राप्ति हो रहा सुभगा ॥ १० ॥ के दा मे स मा (के
 का र ॥ ११ ॥) त पं जे लो क के क त्प न क र ने हा रि ज म्भ
 ॥ १२ ॥ पा धि त्ता म डु म्भो को ड पा स ग म ॥ १३ ॥ मे मो
 धा म्प प म ध र्म दे ने हा रि त्रि ग ॥ १४ ॥ म प हो र ही ना
 न त्व ह पी पी जि स की म्भु जि प्र ह्ना दि दे व ना स न
 का दि सि ध क रो हे न धा यो ग मा त्र से ग म्मा शान
 मा त्र ड पा धि से हो (ही दि न्त म लो ना डी म्प म्प
 मा स मा न हो (ही कं ड ली ना को म्भु जि (अ मे वा ५१)
 क र ता हे र स प्र का यो गी दि न्त म लो म हा वि वि धा
 म्प कुं ड नि नी की वं द ना क र ॥ १५ ॥ अ त्प मे ध
 स ह र ॥ १६ ॥ जि ला ज मे य श ना नि च ॥ १७ ॥ स क म्प
 ध्या न यो ग म्प नु लो ना र्ति जो ड री म्भु ॥ १८ ॥
 र्थो अ म्भ मे ध मे क डो वा ज पे य य रों का फ ल
 भी लो व ल सा वि क स क ध्या ना व ल्धा का सो
 ल ह वे अं श (मां ग) के स मा न न ही हे अ र्था न
 य श दि सा ध ना ओ मे भा म्भे ध ध्या न यो ग हे
 ॥ १९ ॥ र ति ध्या न प्र का र ॥ २० ॥ ड पा धि श्र त्ता
 न त्वं ध ये मे ग ड वा ह न म् ॥ २१ ॥ ड पा धिः प्रो च्चा ते व
 र्ता स र्व मा मा मि धि य ते ॥ २२ ॥ ज व व ड्को
 क में स मा धि वि धी क र ते हे आत्मा के प्र का श
 हो ने वा ले को ड पा धि त्ता आ म चै तं न्म को न
 त्व क र ते हे ड पा धि ओ ए त त्व ये दो नां स व
 वि चार्य हे ड पा धि प्र हा व त प व ॥ २३ ॥ म्भु हे न
 त्व आत्मा क र ता हे ॥ २४ ॥ ड पा धे र पा धा

ज्ञानतत्त्वसंस्थितिरुपमा ॥ समस्तोपाधिवि
 ध्वंसीसदाभासेन जायते ॥ ८२ ॥ उपाधिसंय
 थार्थवैषयिकअलहीहै अथानुविधीन-बोध
 कहै-जेसेस्फटिकतोस्वच्छयेतमात्रहै पालुलान
 पीला-पीला-आदिरंगउपाधिसंवंधसेउत्पन्नका
 साभासमानहोताहै तसहाशरीमेंनिर्विकार
 धआत्माविषयवासनाओंकेसंशर्गसे "अहंमु
 री" अहंइःखी" इत्यादिभासमानहोताहै जवअ
 पनीनिर्मलबुद्धिसेउपाधिपृथक्भोजेतवआत्म
 स्वरूपकायथार्थज्ञानहोताहै जेसेरत्नादिरंग
 मेस्फटिकभीवैसाहोताहै पालुबुद्धिसेजोनकि
 स्फटिकतोशुद्धहैहै पालुइत्यादिरंगोपाधिवि
 कारसेमिथ्याइादेखजागोहै तेमैहीइंद्रियध
 र्मासेआत्माभीजीवात्मायथार्थज्ञानसेअ
 हेतानंदस्वरूपहै-मुखडःखकाशमेंसंवंधनही
 है-इसाज्ञानयोगात्मासमेहोताहै तवयोगी
 उपाधिजावविनाशकरनेमेंसमर्थहोताहै ८३ ॥
 शब्दादीनांचगमात्रयावत्कारादिबुस्थित
 भूतनावदेवंस्मृतं ध्यानं समाधिः स्थापनः प
 रम् ॥ ८४ ॥ ध्यानरूपं समाधिका अवस्था मे
 व प्रकट कहते है कि ध्यानावस्थामें स्थिर रह
 ने योगीके कर्मादि इंद्रियो निषे शब्दादि विष
 योंका सूक्ष्म भाग जव जो उपलब्ध मान होना
 है मभीतों ध्यानावस्था कहानी है जव आत्म
 में पचेंदियक्षितिलीनहोनायेसव आत्मा

में पचेंदियक्षितिलीनहोनायेसव आत्मा में अ
 र्थमात्रका मान रहनेवाली अवस्था समाधि
 कहानी है ॥ ८५ ॥ शब्दादीनांचगमात्रयाव
 त्कारादिबुस्थितम् ॥ तनावदेवं स्मृतं ध्यानं
 समाधिः स्थापनः परम् ॥ ८६ ॥ ध्यानरूपं समा
 धिका अवस्था मे व प्रकट कहते है कि ध्याना
 वस्थामें स्थिर रहने योगीके कर्मादि इंद्रियो
 निषे शब्दादि विषयोंका सूक्ष्म भाग जव
 जो उपलब्ध मान होना है मभीतों ध्यानावस्था
 धारणा पञ्चगती मिथ्या तंच अक्षिनादिभिः
 ॥ दितवा दशकेन स्यात् समाधिः प्राणसंयमा
 त् ॥ ८७ ॥ ध्यानधारणा समाधिका प्रमाण
 कहते है कि प्राणा वायुके व्यापार रोकने
 में पांचधरी पर्वत धारणा कहानी है सेसेही
 इंधरीसे ध्यानऔ एवारहं (१२) अहोरात्र
 पर्यंत प्राणा वायुके व्यापार निरंतर रोकनेसे
 समाधि कहानी है ॥ ८८ ॥ अल्पवैकल्यपारे
 ध्वं जीवात्मम (मात्मतोः) समस्तान्दृष्टं संक
 ल्पः समाधिः सा मेधीयते ॥ ८९ ॥ इत्यांत सहि
 त समाधिका स्वरूप कहते है कि भूस्वरूपम
 कीर्त ॥ ९० ॥ मुखः डः ख इत्यादि बंधकाहीने
 है-इनमे पीडनहोने तथा इनसे अपनेको डके
 गन होने का ऐक्य है इत्यवस्थाको पाथके

जीवात्मा पामात्मा का कारा मात्र रूप
 से ऐक्य जानना समझ मान सा न गों हैं
 (हित समाधि ही तो है ॥८५॥
 अम्यु से चवयो रे कं यथा भवति योगी
 ॥ तथा मन सो रे कं समाधिः सोऽभिधीय
 ते ॥८६॥ जीवात्मा पामात्मा का तथा आत्मा
 ओ (मन का ऐक्य न हूँ मे सिद्धि नहीं होगी
 अग एव दृष्टा त सहित कहते हैं कि जे से जल
 में से धानो न (सैंधव) देने से दोनों का ऐक्य
 दीखता है ते से ही मन का ल विषयों से विमु
 ख अंत मुख होकर आत्मा का एत नि होने से
 आत्मा ओ (मन का ऐक्य होना है) से जीवा
 त्मा पामात्मा के ऐक्य को समाधि कहते हैं
 ॥८६॥ यदा संक्षीयते प्राणो मान संच प्र
 लीयते ॥ यदा समस्त सर्वं समाधिः सोऽ
 भिधीयते ॥८७॥ मन एवं प्राण को एकत्र
 करके स्थिर होकर आत्मा के भावना करने वा
 ले योगी का जव प्राण वायु आत्मा ही में लीन
 होता है तव अंतः कर ॥ भी लीन होता है जल
 तथा सैंधव की सी जीवात्मा पामात्मा की
 ऐक्यता (अभिन्नत्व रूपता) होगी है इसी को
 समाधि कहते हैं ॥८७॥ नगन्धन रस रूप
 गंध स्पर्श न निःस्वन मृत् ॥ नामानं न पृथ्व्यं
 च योगी युक्तः समाधिना ॥८८॥ योगी के

समाधि में रहने की अवस्था कहते हैं कि
 जो योगी समाधि में एकत्व को प्राप्त हो जा
 ता है तो सर्व इंद्रियाण मन में लीनता को
 प्राप्त होकर (गंध रस रूप स्पर्श शब्द रस
 पांच विषयों को नहीं जानता को ई वात्मा
 न अपना वा पाया कद नहीं जानता जी
 वात्मा तथा पामात्मा को अलग नहीं मानता
 एक ही समझता है इस प्रकार ध्यान में एका
 ग्र होने से ओ (किसी प्रकार मान नहीं होता
 ॥८८॥ अमेधः सर्व शस्त्राणां भवधः स
 र्वदेहिना म् ॥ अग्राह्यो मंत्रयंत्राणां योगी
 युक्तः समाधिना ॥८९॥ जव योगी कत वि
 धि से समाधि युक्त हो जाता है सो समस्त
 शस्त्रों से अमेध (न कहे योग्य) होता है दे
 ही (मनुष्य) सिंह राज व्याध आदियों से
 अवध्य नहीं मारा जाता मंत्र यंत्र मारा से
 हतादि प्रयोग (जो ५) भी इस पान नहीं चालता
 ॥८९॥ वाद्य तो न सका ले न म्मि योगी युक्त
 लिख्य तो न सकर्मणा ॥ साध्य ते न च केनपि
 योगी युक्तः समाधिना ॥९०॥ जव योगी समा
 धि में स्थिर हो जाता है तो इसको जरा (गुण पा)
 एवं सरा (मृत्) पीडन नहीं कर सकने अर्थात्
 अजाम हो जाता है इस प्रकार का वश नहीं चाल
 ता पाप पुण्य है हेतु जिस के से से कर्मबंध नो
 से निवृत्त नहीं होता ओ (कोई से विषय वासन में
 नहीं लगता य सकता किसी के साधन में यह नहीं

आता ॥६०॥ युग्माहारविहारस्य युक्तचेष्ट
स्य कर्मसु ॥ युक्तस्य प्रावबोधस्य योगी भवति
३:२६॥ ॥६१॥ मिताहारयुक्तस्य वहा ॥ मे
१६॥ ॥६२॥ योगी समस्त कर्मेभिर्भुज्यते ॥ ६३॥
एतिका जागर ॥ मोयुक्तस्वता है अर्थात् कोई का
मभी अयुक्त (अति) नहीं करता पूर्वोक्त क्रिया
ओं में सावधान ॥ ६४॥ ॥६५॥ कलकायो ॥ ३:२७॥ श
क कहता है ॥ ६६॥ ॥६७॥ निराधत्तं निरात्म्यं निष्प्र
पञ्चं निरामयम् ॥ निराश्रयं निराकारं नित्यं जा
नाति योगवीर ॥ ६८॥ ॥६९॥ जव योगी कर्मविधिसे
समाधि में स्थिर हो जाता है तब प्रत्यक्ष ज्ञान
का आधत्त (जन्ममरण) नहीं को सी के आत्मा
वन (निमित्त में) नहीं भाषा आदिको लिके आ
श्रय में नहीं है न कल्पना में नहीं है जन्ममरण ॥ ७०॥
३:२८॥ ॥७१॥ सेनीवात्मा प्रमाणों के सेवक हो
रहे आत्मस्वरूप तत्त्व को जानता है ॥ ७२॥ ॥७३॥ निर्म
लं निश्चलं नित्यं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत्
॥ ७४॥ ॥७५॥ निश्चल (वेष्टा रहित) नित्य (परिणाम
रहित) निष्क्रिय (सर्व व्यापाररूप) निर्गुण (स
त्त्वादिगुण रहित) महत् (जिसका परिमाण
नहीं किया जाता ऐसे) कोम (चिदाकाशस्वरूप)
विशाल (बोधस्वरूप) आनंद प्रसन्न (अवे
गानंदस्वरूप) प्रसन्न को प्रसन्न वित् (योगी) जान

ते हे ॥ ६३ ॥ हेतुद्वयानिर्मुक्तमनोवृद्धि
 ध्यो। गोचरम् ॥ योमविज्ञानमानन्दतत्त्वं
 तत्त्वविदो विदुः ॥ ६४ ॥ साक्षात्काराकेनिये
 हेतुसर्वद्वयान्तसे। हिततथामनसर्ववृद्धि
 कारकेअगम्यविवाकाशस्वरूपबोधस्वरू
 प। अद्वैतानंदस्वरूपतत्त्व (ब्रह्म) को ब्रह्मसा
 नीयोगीजानते हे ॥ ६४ ॥ निरातर्क निरात
 म्बेनिराधारेनिरामये ॥ योगीयोगविधाने
 नपरे ब्रह्मशिलीयते ॥ ६५ ॥ योगाभ्यासी
 पुरुषसदंगयोगको पूर्वोक्तविधिसेअभ्या
 सेअभ्यासकारकेजन्मभ्राण्णादिदुःखकेस्पर्श
 नहोनेवालेअवलोकनरहितसर्वजिसको
 कोईआधारनहींअनिर्वचनीयरोगादिरहित
 प। ब्रह्ममेंलानहोताहेअर्थात्सायुज्यपदको
 प्राप्तहोताहे ॥ ६५ ॥ यथाधनेधनंक्षिप्रं धन
 मेवहिजायते ॥ क्षारंक्षारेनथायोगीतत्त्वमे
 वहिजायते ॥ ६६ ॥ जैसेधनमेंधनमिलायके
 धनतथकुंधमेंकुंधमिलायकेकुंधहीहोताहे
 जैसेहीतत्त्वस्वरूपप। ब्रह्ममेंयोगाभ्यासकारके
 लीनहोताहूआयोगीभीप। ब्रह्मस्वरूपसायुज्य
 कोप्राप्तहोताहेतात्पर्ययहकिजीवओ। प।
 ब्रह्मकासांसारिकदशामेंउपाधिक। केसेबहु
 रमेंभीउपाधिगष्टहोव। दोनों। घट्टपहोका
 रूपाताकोप्राप्तहोताहे ॥ ६६ ॥ कुंधेक्षी

धनेसमिर्गौवहिरिवापिनाः॥नमयत्वं
 व्रजन्तेवेयोगीतिनःपरपदे॥६॥जोसेकुध
 मेंकुधधनमेंधनदीपमेंदीपमिलायकेन
 दोनोंकारेकहोजागोहेनैसेहीयोगीआमा
 प(प्रहमेंतीनहोकरपरप्रहमयहोजाग
 हेआमाप(माताएकहैप(चपाविमे
 दसेपृथक्मानगेहेजवअमाससेपावि
 हिनहोगाहेनवनकीरेकनाआपहीप्रकट
 होतीहे॥६॥भवमयहरंहरांमाकिसोपा
 नसंशकम्॥७॥धुल्लुधनरंयुधंगोरक्षे॥प्र
 काशिनम्॥६॥योगाभासकरनेवालोंके
 जन्ममर॥॥दिमयहरंवालाभुक्तिवा
 मेजानकेलायेसोपान(सीखी)संशकसर्व
 धर्मअर्थकामदेनेवालागुप्तसभीअनिगु
 प्तयहयोगशास्त्रजीगोरक्षनाथनेयोगियों
 प(हमाकरकेसमा(मेंप्रकटकिया॥६॥
 गोरक्षसंहितामेंनायोगभूतोजनःपठेन्॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तोयोगसिद्धिंलभेध्रुवम्
 ॥६॥पूर्वोक्तप्रका(सेयहंपर्यंतभुक्तिसो
 पानअन्यपार्थसंशकगोरक्षसंहितायोग
 शास्त्रकोजोमनुष्यभक्तिपूर्वकपठताहैवह
 समस्तपापकोसेनिर्मुक्तहोकरनिश्चययो
 गसिद्धिकोप्राप्तहोताहै॥६॥योगशास्त्र
 पठानिम्नकिमन्यैःशास्त्रविमारे॥यत्पर्य

चादिनाथस्यनिर्गतंवदनाम्बुजातु॥॥॥
 जोगनयोगशास्त्रकर्मनिमित्तपठतेहैंओ
 विना(शास्त्रोंसेक्याकरनाहैयोगशास्त्रको
 कर्मफलयाथोक्तप्रत्यक्षमिलनाहैक्योंकिय
 हशास्त्रआदिनाथ(शिवजी)नेस्वयंहृदयक
 मलमेंअनुभूतहोकरमखकमलसेप्राप्तकिया
 इसकेअनुभवसिद्धहोतेसेअतिप्राप्तमहमाणि
 कहै॥१०॥स्नानंतेनसमस्ततीर्थसालेनंद
 नादिजन्मोदरायशानाचडुतंसहस्रमयुगेदे
 वाश्रसंप्रजिताः॥स्वाधनेनसुतर्पिताश्चपि
 रःस्वर्गोचरीताःपुनःयत्प्रह्लाविचारोद्यता
 मपिप्राप्तोनिधैर्यंमनः॥१०॥शतिजीगोर
 खायोगशास्त्रेभुक्तिसोपानसंशकेशागक
 सम्पूर्णम्॥१॥साक्षात्मोक्षकेप्रातिपादन
 करनेवालेयोगशास्त्रकोजोपठतेहैंवेधनकम
 होजातेहैंजिसकाभनप्रह्लाशानविचारमेंब्रह्म
 ध्यानविषयसाराभाजमीदोर्थसेस्थिरहोताहै
 सतेगंगाप्रयागपष्करादिसमस्ततीर्थकेज
 लोंमेंस्नानकरनियामसमस्तपृथ्वीकादानसमा
 त्रब्राह्मणकोदेदियासहस्रकिंवाअयुगअथ
 मेधवाजपेयादिमहायज्ञकरनियेप्रह्लाविष्णु
 महेशादिसमस्तदेवताविधिपूर्वकपूजितकर
 नित्येस्वादिकअनसेपित(प्रक(केस्वामी
 पठायेदियेअर्चागुनीर्थस्नानकर्मवस्तुओंसे
 जोफलमिलताहैवेसमस्तआत्मचिंतनपयो

गात्राससेनसरागात्रहोजानिहे ॥१०९॥
 शनिमहीधकनायोगोदसंहितामात्राया
 माहीधयाभुतशतकंपरिपूर्णा ॥११॥
 कोनाथीकपयामयाविरचितामात्रास्य
 वक्ष्याम्यसर्ववामुपकारिणीवृद्धजनाः
 शिष्यार्थसंचायितः ॥ मात्राशतवहेननकु
 रतनोयोगोहितशायजे ॥ शिष्यार्थैर्विविधै
 र्यतोदृष्टयुगादीन्वीक्ष्यावेत्तारिता ॥१२॥
 मात्राकारकीप्रस्तावनाहेकिमेनेजीनाथ
 (आदिनाथ) महादेवस्यसुपुत्रीगुह्यधा
 कीनाथ (लक्ष्मीपतिविश्व) कोक्षपासे
 सर्वसाधारणकेउपकारार्थअपनीअल्पवृद्धि
 सेहसयोगशास्त्रगोदक्षःसंहिताकीमात्रा
 धीकाकीहैइसेदेखनायव्याकरणादिज्ञा
 ननेवालेवृद्धजनेमात्राहैसमाकहकरअ
 वेहेनन (अनाद) नकरेयनःयहनिश्चय
 हैकियोगमार्गकाबोधअनेकप्रकारकेश
 व्द्यार्थसंश्लेषार्थनर्कवितर्कादिकहेनेसे
 नहींहोतायहकेवलगुह्यअहैकोईपेडि
 तचाहेकिअपनेपांडित्यकेवलसेसोकार्थ
 करेनोयहप्रयोगनकदापिनहींहोनाप्रथम
 गुह्यलक्ष्यकाकेस्यानुभवसिद्धिकहेहीसेई
 सकाज्ञानहोगाहैइसलियेगुह्यप्रसादोत्तर
 हठप्रदीपादिग्रन्थदेखकेयहग्रन्थव्यादि
 यानथामात्रार्थश्रीअथामतिप्रकारकरदिया
 ॥१३॥ सम्पत्तर्कइत्यादिमार्गमूलसंक्षीप्तगीता



25

20

15

10

5

0

5

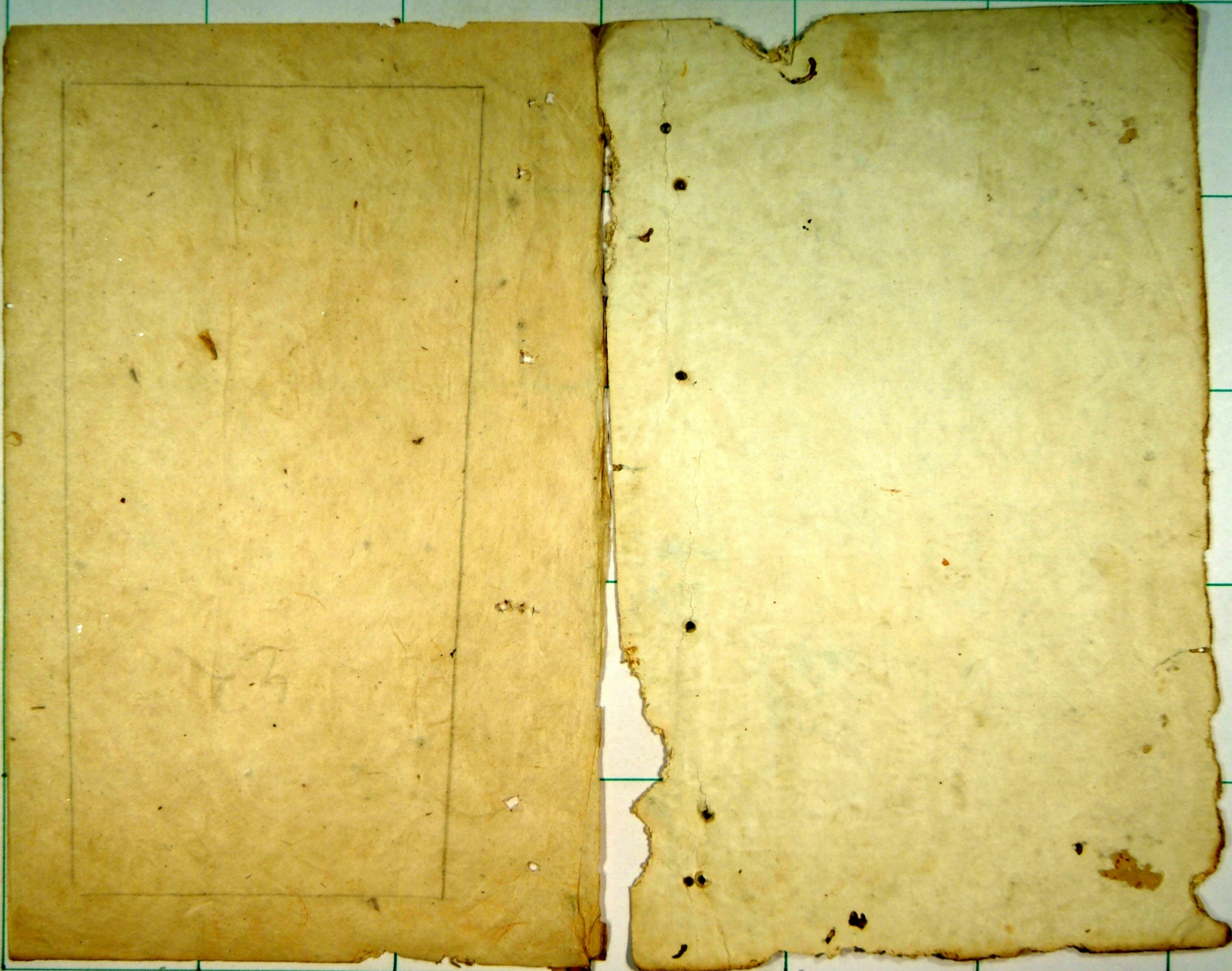
10

15

20

25

30



CARNATION BRAND



MADE IN JAPAN